मितव्यय

[डाक्टर सेमुअल स्माइल्स की "थ्रीफ्ट" नामक
पुस्तक के आधार पर लिखित]

लेखक

रामचंद्र वर्म्मा

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९२७ मूल्य १।)

भूमिका

यह "मितव्यय" अँगरेजी की "थ्रिफ्ट" नामक एक प्रसिद्ध पुस्तक का छायानुवाद है। पुस्तक के मूल लेखक का नाम है,—डाक्टर सेमुएल स्माइल्स। स्माइल्स साहब स्काटलैंड के निवासी थे और उनका जन्म हैडिंगटन नामक स्थान में २३ दिसंबर सन् १८१२ को हुआ था। प्रसिद्ध एडिन्बरा विश्वविद्यालय में उन्होंने शिक्षा पाई थी। वहीं वे पहले ग्रेजुएट हुए और तदनंतर चिकित्साशास्त्र का अध्ययन करके डाक्टर हुए। डाक्टरी पास करने के उपरांत कुछ दिनों तक वे अपने जन्म-स्थान हैडिंगटन में चिकित्सा का कार्य करते रहे। थोड़े दिनों बाद उन्हें साहित्यसेवा का शौक हुआ और सन् १८३८ में वे "लीडस टाइम्स" नामक समाचारपत्र के संपादक हो गए। छः वर्ष तक बड़ी योग्यता से उक्त पत्र का संपादन करने के उपरांत सन् १८४४ में वे इस कार्य से पृथक् हो गए। इसके उपरांत सन् १८४५ में वे "लीडस एंड थर्स्क" नामक रेलवे कंपनी के सहकारी मंत्री हो गए और सन् १८५४ तक उसी पद पर रहे। पर इस अवसर में भी वे साहित्यसेवा

मूल ग्रंथकार का परिचय।

न भूले और सदा भिन्न भिन्न समाचारपत्रों में अपने लेखादि भेजा करते थे। उक्त रेलवे कंपनी के सहकारी मंत्री रहकर उन्होंने अच्छा अनुभव प्राप्त किया था; इसलिये सन् १८५४ में वे साउथ ईस्टर्न रेलवे के मंत्री बना दिए गए और सन् १८६६ तक उसी पद पर रहे।

सन् १८५७ में स्माइल्स साहब ने भाप के इंजन का आविष्कार करनेवाले जार्ज स्टीफ़नसन का एक जीवनचरित्र लिखा जो उसी वर्ष प्रकाशित हुआ। इसके बाद उन्होंने जीवनियाँ लिखने की मानों धुन सी बाँध दी और बराबर एक के बाद एक, अनेक शिल्पियों और वैज्ञानिकों के जीवनचरित्र वे लिखते गए। उनमें से बाल्टन और वाट तथा टामस एडवर्ड के जीवनचरित्र, तथा लाइफ एंड लेबर (Life and Labour), इंडस्ट्रियल बायोग्राफी (Industrial Biography) आदि ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हैं। इसके सिवा उन्होंने आयरलैंड का एक इतिहास और ह्यूगेनोज़स (Hughenots) * का

* ह्यूगेनोज़स एक प्रकार का राजनैतिक उपनाम है। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में, फ्रांस में इस नाम का संप्रदाय स्थापित हुआ था। इस दल के लोग अपने सच्चरित्र और सात्विक गुणों के लिये बहुत प्रसिद्ध होते थे। इन लोगों को कई बार कैथोलिक संप्रदायवालों से युद्ध भी करना पड़ा था। साम्राज्य की ओर से इन लोगों के साथ बहुत कठोरता का व्यवहार किया जाता था और इन्हें अनेक प्रकार के कष्ट दिए जाते थे। पर तो भी इन लोगों की संख्या और शक्ति दिन पर दिन बढ़ती ही जाती थी। अनेक विपत्तियाँ झेलने के बाद सन्

इतिहास भी लिखा था। इन पुस्तकों का अँगरेजी साहित्य में अच्छा आदर है। इन्हीं ग्रंथों के कारण स्माइल्स साहब ने बहुत नाम पाया था, और एडिन्बरा के विश्वविद्यालय ने उन्हें आनरेरी एल० एल० डी० की उपाधि भी दी। तब से वे डाक्टर स्माइल्स कहे जाने लगे।

इन अनेक इतिहासों और जीवनियों के अतिरिक्त स्माइल्स साहब ने चार और पुस्तकें लिखी थीं जिनके कारण उनका नाम साहित्य-संसार में प्रायः सदा के लिये अमर हो गया। उनमें से पहली पुस्तक सेल्फ-हेल्प सन् १८५९ में प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक का अँगरेजों में बहुत अधिक आदर हुआ और लोगों ने बड़े चाव से उसे पढ़ा। उसका बहुत अधिक आदर देखकर स्माइल्स साहब का उत्साह बढ़ा और सन् १८७१ में उन्होंने "कैरेक्टर" नामक दूसरी पुस्तक लिखकर प्रकाशित कराई। दूसरी पुस्तक का भी वैसा ही आदर देखकर उन्होंने "थ्रिफ्ट" नामक तीसरी पुस्तक लिखी जिसका यह छायानुवाद पाठकों की सेवा में उपस्थित है। इस पुस्तक का

१५९८ में इन लोगों ने सब प्रकार के राजनैतिक अधिकार प्राप्त कर लिए थे और ये स्वतंत्र हो गए थे। पर इन लोगों की यह स्वतंत्रता ३० वर्ष से अधिक न ठहर सकी और सन् १६२८ से इन पर फिर अत्याचार होने लगे। फल यह हुआ कि इस दल के असंख्य लोगों को अपना देश छोड़कर भागना और प्रशिया, स्विजरलैंड तथा इँगलैंड में जाकर रहना पड़ा। उसी समय से इनका बल टूट गया। इनके वंशज अब तक यूरोप के अनेक भागों में पाए जाते हैं।

कुछ अंश लिखने और प्रकाशित कराने के बाद ही उनको लकवे की बीमारी हो गई और वे दो-तीन वर्ष तक उसी से पीड़ित रहे। स्वस्थ होने पर सन् १८७५ में उन्होंने यह पूरी पुस्तक प्रकाशित कराई। इस क्रम की उनकी चौथी पुस्तक का नाम "ड्यूटी" है जो सन् १८८० में प्रकाशित हुई थी। इन चारों पुस्तकों में से प्रत्येक की अँगरेजी में बीसियों और पचीसियों छोटी-बड़ी आवृत्तियाँ हो चुकी हैं और लाखों आदमियों ने उन्हें बड़े चाव से पढ़ा है। इसके सिवा संसार की बीसियों अच्छी-अच्छी भाषाओं में इन चारों पुस्तकों के अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। इस मनोरंजन पुस्तकमाला में स्माइल्स साहब की शेष तीनों पुस्तकें भी सम्मिलित हैं।

स्माइल्स साहब का देहांत लंदन में, ९२ वर्ष की अवस्था में, गत १६ अप्रेल सन् १९०४ को हुआ था।

इस पुस्तक में क्या है ?

अपनी "सेलफ-हेल्प" और "कैरेक्टर" नामक पुस्तकों में स्माइल्स साहब ने यह बतलाया है कि मनुष्य को वास्तविक "मनुष्य" बनने के लिये अपना आचरण परम शुद्ध बनाना चाहिए और सदा आत्मनिर्भरता से कार्य लेना चाहिए। आचरण से केवल चालचलन का अभिप्राय नहीं है, बल्कि उसमें और भी अनेक आवश्यक सद्गुण सम्मिलित हैं। मनुष्य को सबसे पहले आत्म-निर्भर और तब सदाचारी होने की आवश्यकता होती है। जो मनुष्य आत्म-निर्भर और
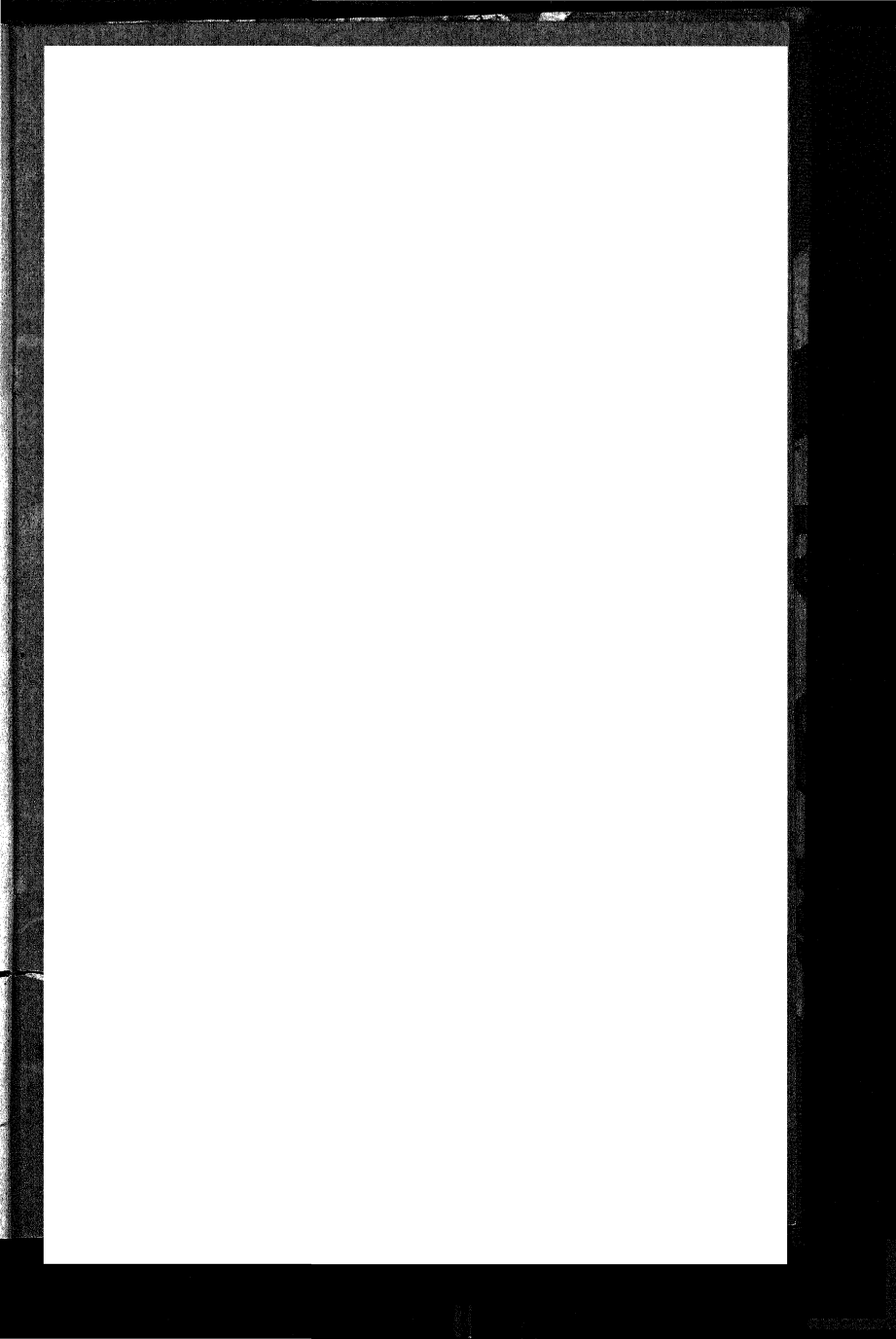
मनोरंजन पुस्तकमाला-१५

संपादक

श्यामसुंदरदास, बी० ए०
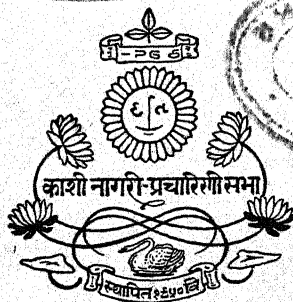
काशी नागरीप्रचारिणी सभा की अनुमति से

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

चरित्रवान् न हो उसकी जीवन-यात्रा बहुत ही दुष्ट और नीच होती है। लेकिन जिस मनुष्य के पास धन का अभाव है, उसके लिये आत्म-निर्भर रहना अथवा अपनी सहायता करके अपने आपको उन्नत बनाना प्रायः दुष्कर ही है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि धनहीन मनुष्य के पास चरित्र-बल हो ही नहीं सकता, पर इसमें भी संदेह नहीं कि मनुष्य को अपने अनेक सद्गुणों का विकास करने के लिये संपन्न होने की बहुत आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त संसार के सौ कामों में से नब्बे कामों में विशेष आवश्यकता धन की ही होती है; और धन संग्रह करने के लिये मनुष्य को मितव्ययी होना चाहिए। इसलिये अपनी पहली दोनों पुस्तकों के परिशिष्ट-स्वरूप स्माइल्स साहब ने यह तीसरी पुस्तक लिखी है।

इस पुस्तक में धन के सदुपयोग और दुरुपयोग पर विचार किया गया है। यह विषय बहुत ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि मनुष्य के अधिकांश सात्विक गुणों का संबंध धन के सदुपयोग से ही है। अर्थात् मनुष्य सद्गुणी होने पर भी बिना धन की सहायता के जगत् का बहुत ही थोड़ा उपकार कर सकता है। इस पुस्तक में कई स्थानों पर यह दिखलाने की चेष्टा की गई है कि धन का सदुपयोग मनुष्य को उदार, विचारवान् और न्यायशील बना देता है; उसे इंद्रिय-निग्रह की शिक्षा देता है और सब प्रकार से उसे सम्मान और आदर के

योग्य बनाता है। इसके विपरीत जो मनुष्य अपव्ययी होता है और धन का दुरुपयोग करता है वह अविचारी, अन्यायी, स्वार्थी और दरिद्र रहता है और उसके द्वारा जगत् का तिल मात्र भी उपकार नहीं हो सकता। यही नहीं, बल्कि उसे पृथिवी का अनावश्यक भार समझना चाहिए।

मितव्ययी होना केवल इसी लिये आवश्यक नहीं है कि उससे मनुष्य में अनेक सद्गुण आते हैं; अथवा अधिक से अधिक ऐसा मनुष्य बढ़कर आदर्श हो सकता है। नहीं, सामाजिक और धार्म्मिक दृष्टि से भी मितव्ययी होना और धन का सदुपयोग करना हमारा परम कर्त्तव्य है। समाज के प्रत्येक अंग अर्थात् प्रत्येक मनुष्य का यह प्रधान कर्त्तव्य है कि वह सब प्रकार से अपने समाज को अधिक संपन्न, अधिक शक्तिशाली और अधिक उन्नत करे। जो मनुष्य मितव्ययी नहीं होता वह और उसका परिवार समाज का भार होते हैं। ऐसे मनुष्यों से समाज का धन और बल दोनों नष्ट होते हैं। जिस समाज में अपव्यय करनेवालों की अधिकता होती है वह समाज दिन पर दिन अधिक क्षीण होता जाता है और उसके विनाश में अधिक समय नहीं लगता।

धार्म्मिक दृष्टि से भी मितव्यय का महत्त्व कम नहीं है। जिन जीवों के हम जनक होते हैं उनके खान-पान, भरण-पोषण और रक्षा आदि का पूरा प्रबंध करना हमारा परम धर्म्म है। यही नहीं बल्कि जो लोग बिना इन सब बातों का प्रबंध किए

संतान उत्पन्न करते हैं और अपना यह उत्तरदायित्व भूल जाते हैं वे निस्संदेह ईश्वर और अपने वंशजों के सामने बड़े भारी अपराधी हैं। हमारी संतान तो हमें इस अपराध के लिये कोई दंड नहीं दे सकती पर ईश्वर हमें उसके लिये छोड़ भी नहीं सकता। हमें किसी न किसी रूप में उस अपराध का यथेष्ट दंड अवश्य मिलता है। यदि हम अज्ञानवश उस दंड का मर्म न समझकर भविष्य में भी वैसे ही अपराध करते जाँय तो यह और भी भारी दोष है, क्योंकि ईश्वर ने मनुष्य को एक ऐसी अलौकिक शक्ति दी है जिससे वह चेष्टा करने पर सब प्रकार का भला-बुरा भली भाँति समझ सकता है। पर यदि वह उस शक्ति का उपयोग न करे अथवा सृष्टि के नियमों का पालन न करे तो उसे दंड अवश्य मिलेगा और तब उसे किसी प्रकार की शिकायत करने या ईश्वर को दोष देने का कोई अधिकार नहीं है।

ईश्वर ने मनुष्य को संसार में इसलिये भेजा है कि वह यहाँ आकर सब प्रकार से अपनी और संसार की उन्नति करे और ईश्वर-प्रदत्त ज्ञान और विवेक से स्वयं लाभ उठावे तथा दूसरों का उपकार करे। आत्मोन्नति और जीवन-निर्वाह दोनों के लिये परिश्रम की आवश्यकता होती है। हमें केवल अपने जीवन-निर्वाह के लिये परिश्रम करके ही निश्चिंत या संतुष्ट न हो जाना चाहिए बल्कि अपनी उन्नति के लिये परि-श्रमपूर्वक उपार्जित की हुई जीविका का सदुपयोग सीखना

चाहिए। बिना इसके हमारे जीवन का उद्देश्य कभी सफल हो नहीं हो सकता। हम न तो कभी सुखी हो सकते हैं और न स्वतंत्र। सुख और स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये हमें दूरदर्शी, विचारी और मितव्ययी होना चाहिए और अपनी इंद्रियों को वश में रखना चाहिए। यही नहीं बल्कि न्यायवान् या उदार होने के लिये भी हमें इन्हीं बातों की आवश्यकता होती है। जो अपनी इंद्रियों को वश में नहीं रख सकता वह कभी मित-व्ययी नहीं हो सकता। अर्थात् सब प्रकार के सद्गुणों का मूल मितव्यय और मितव्यय का मूलमंत्र आत्म-संयम है।

इस पुस्तक में इन्हीं कई बातों का विशद रूप से वर्णन किया गया है और मितव्यय से होनेवाले लाभ तथा अमित-व्यय से होनेवाले दोष समझाए गए हैं। मूल लेखक ने अपनी भूमिका में कहा है—"यह पुस्तक इस उद्देश्य से लिखी गई है कि इसे पढ़कर लोग अपने उपार्जित किए हुए धन को केवल अपने मजे के लिये नष्ट न कर दें वरन् उसका सदुपयोग करना तथा उसे भले कामों में लगाना सीखें, लेकिन इस शिक्षा को ग्रहण करने तथा उसके अनुसार कार्य करने में आलस्य, अवि-चार, अहंकार, दुर्गुण आदि अनेक शत्रुओं का सामना करना पड़ता है।" उद्देश्य बहुत ही साधु है और उसकी सिद्धि के लिये यथासाध्य उद्योग करना प्रत्येक विचारशील मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। लेखक का परिश्रम तभी सफल समझना चाहिए जब कि यह उद्देश्य भली भाँति सिद्ध हो।

ऊपर कहा जा चुका है कि स्माइल्स की ये चारों पुस्तकें यूरोप में बड़े चाव से पढ़ी गई हैं और उनकी कोड़ियों आवृत्तियाँ हो चुकी हैं। इसके सिवा संसार की अनेक भाषाओं में भी उनके अनुवाद हो गए हैं। थ्रिफ़्ट (मितव्यय) की पहली आवृत्ति सन् १८७५ के नवंबर में प्रकाशित हुई थी। तब से जून १९०८ तक अँगरेजी में उसकी सब मिलाकर २४ आवृत्तियाँ हुईं। प्रायः यही दशा शेष तीनों पुस्तकों की भी है। इन बातों से पुस्तकों के आदर का कुछ अनुमान हो सकता है।

पुस्तक की कुछ बातों पर विचार

स्माइल्स की लेख-शैली में मधुरता का अभाव है। कहीं-कहीं तो उसके वाक्य हंटर की तरह लगते हैं और उनसे चित्त खिन्न हो जाता है। कहा जा सकता है कि "हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः"। पर यह सिद्धांत एकदम ठीक नहीं है। उपदेश की शैली मनोरंजक और मनोहर भी हो सकती है। और नहीं तो कम से कम साधारण तो अवश्य रहनी चाहिए। ऐसी पुस्तकों की लेखशैली यदि मधुर और प्रिय हो तो उससे कहीं अधिक लाभ संभावित हो सकता है। इसके विपरीत जो शैली अमधुर और अप्रिय हो, वह पाठकों के विचार अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती; उल्टे उनमें एक प्रकार की अरुचि उत्पन्न कर देती है। इसमें संदेह नहीं कि स्माइल्स की पुस्तकों के पाठक बहुसंख्यक हैं पर यह नहीं कहा जा सकता कि पुस्तक पढ़ने के समय उनके विचार उसके प्रति

कैसे हो जाते हैं। दूसरी बात यह है कि स्माइल्स की पुस्तकें प्राय: श्रमजीवियों, नवयुवक विद्यार्थियों तथा साधारण स्थिति के अन्य लोगों के लिये ही हुआ करती हैं; इसलिये इस संबंध में सर्वसाधारण का मत जानना बहुत ही कठिन है। इसके सिवा थ्रिफ्ट में तो अनेक स्थानों पर बहुत सी पुनरुक्तियाँ भी पाई जाती हैं। एक ही विचार को प्राय: उन्हीं शब्दों में अनेक स्थानों पर प्रकट किया गया है। इस प्रकार का पुनरुक्ति दोष बहुत अधिक न होने पर भी कम नहीं है। इस छायानुवाद में यथासाध्य उस दोष से बचने का प्रयत्न किया गया है।

एक और विलक्षणता स्माइल्स की इन चारों पुस्तकों में यह है कि उनमें, पुस्तकों का आकार देखते हुए, पुष्ट विचार तो कम और उदाहरण बहुत अधिक हैं। उदाहरण संग्रह करने में लेखक महाशय ने भिन्न भिन्न स्थानों के अनेक मित्रों से बहुत कुछ सहायता भी ली थी। प्राय: सभी पुस्तकों में उदाहरणों के लिये तो आधे से अधिक पृष्ठ दिए गए हैं और शेष आधे से कम में विचार हैं। इसमें संदेह नहीं कि उदाहरण संग्रह करने में परिश्रम बहुत अधिक करना पड़ता है, उसके लिये अधिक जानकारी की आवश्यकता होती है और अनेक अवसरों पर उनका प्रभाव भी अच्छा पड़ता है। पर तो भी उदाहरणों की इतनी भरमार अच्छी नहीं मालूम होती। अँगरेजी साहित्य में अनेक पुस्तकें ऐसी वर्त्तमान हैं जिनमें

इन पुस्तकों की अपेक्षा और भी अधिक उदाहरण भरे रहते हैं; पर भारतीय साहित्य में ऐसी पुस्तकें प्राय: नहीं के समान हैं। यद्यपि किसी एक विषय का वर्णन करके उसके संबंध में दो-एक उदाहरण दे देने से, वह विषय भली भाँति समझ में आ जाता है और उसका प्रभाव भी पढ़नेवाले के चित्त पर बहुत अच्छा पड़ता है; पर उसी विषय के बीसियों और पचीसों उदाहरण देने से केवल पुस्तक का आकार बढ़ने के और कोई विशेष लाभ नहीं होता। किसी एक विषय को उठाकर, तत्संबंधी उदाहरण देने के लिये किसी महान् पुरुष का पूरा जीवनचरित्र या किसी बड़े कारखाने का आद्योपांत इतिहास दे देना युक्तिसंगत नहीं मालूम होता।

जिस प्रकार मूल पुस्तक में उदाहरणों की भरमार है, उसी प्रकार इस छायानुवाद में उदाहरणों की अपेक्षाकृत त्रुटि भी है। इसके कई कारण हैं। पर उनमें से मुख्य कारण यह है कि हमारे यहाँ वैसे उदाहरणों का मिलना बहुत से अंशों में कठिन और कहीं-कहीं असंभव भी है। इँगलैंड आदि देशों में विद्याचर्चा चरम सीमा तक पहुँची हुई है और वे देश बहुत छोटे-छोटे हैं। उन देशों में जहाँ किसी मनुष्य ने कोई छोटा-मोटा काम भी किया तो उसकी प्रसिद्धि सारे देश में हो जाती है और सर्वसाधारण शीघ्र ही उसका परिचय पा जाते हैं। पर हमारे देश की दशा इससे बिलकुल भिन्न है। एक तो

हमारे यहाँ इस प्रकार काम करनेवालों के संबंध के वर्णन ही लेखबद्ध नहीं किए जाते और यदि संयोगवश कभी कहीं संग्रह या रचित भी कर लिए जायँ तो सर्वसाधारण में उनकी प्रसिद्धि बहुत कठिनता से होती है। राजा कर्ण, महाराज शिवाजी, महारानी अहिल्याबाई, और नवाब वाजिदअली शाह आदि कई बहुत बड़े काम करनेवालों के सिवा, साधारण लोगों को तो यहाँ कोई जानता भी नहीं। इसलिये पुस्तक में ऐसे लोगों के उदाहरण देना, जिन्हें बहुत ही थोड़े लोग जानते हों, प्राय: निरर्थक और अनुचित सा जँचता है। इसलिये तथा अन्य कई कारणों से इस पुस्तक में उदाहरणों की बहुत कमी रह गई है। तो भी जहाँ तक हो सका है, इसमें थोड़े-बहुत भारतीय उदाहरण देने की चेष्टा की गई है। आशा है, पाठकगण उन्हीं से संतुष्ट हो जायँगे।

यों तो प्रत्येक देश के अपव्ययी निवासियों के लिये यह पुस्तक समान रूप से उपयोगी और उपादेय है, पर भारत-वासियों के लिये इसकी आवश्यकता सबसे अधिक है। पृथिवी के समस्त ऐसे देशों में, जिनमें शिक्षा या सभ्यता का कुछ-कुछ प्रचार हो चला है, अकेला भारतवर्ष ही सबसे अधिक दरिद्र है। उसके प्राचीन महत्व और गौरव को छोड़-कर, उसकी वर्तमान स्थिति को चाहे जिस दृष्टि से देखिए, उसे बहुत ही हीन और बुरी दशा में पाइएगा। भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। अर्थशास्त्र के विद्वानों का मत है कि

किसी देश को वास्तव में संपन्न और धनवान् बनानेवाले वे ही लोग मुख्य हैं जो खेती-बारी करते और कच्चा माल उपजाते हैं। हमारे भारत के निवासियों में प्रति सौ में ९५ आदमी ऐसे हैं जो खेती-बारी करते और कच्चा माल तैयार करते हैं। पर उन लोगों की आर्थिक दशा इतनी हीन और शोचनीय है कि उसका ठीक-ठीक वर्णन करना बिलकुल असंभव ही है। जिस देश के करोड़ों आदमियों को, सुख-सामग्री की कौन कहे, कभी दिन-रात में एक बार भी भर पेट भोजन न मिलता हो और जिस देश में दस वर्ष के अंदर दो करोड़ आदमी अकाल के कारण मर गए हों* उस देश की दुरवस्था का वास्तविक चित्र कौन खींच सकता है। हमारे देश की जनसंख्या अकाल और प्लेग आदि के रहते हुए भी, कुछ न कुछ बढ़ती ही जाती है। चीजों की महँगी और खर्च की बढ़ती दिन पर दिन अधिक अपरिमित और मर्य्यादा-रहित होती जाती है और आय, बड़े-बड़े विद्वानों के कथनानुसार, घटती जाती है। ऐसी दशा में उन लोगों को, जिन्हें आठ पहर में एक बार भी भर पेट अन्न न मिलता हो, मितव्यय का उपदेश देना बहुत ही हास्यास्पद है। हास्यास्पद ही नहीं, इसकी गणना क्रूरता में की जानी चाहिए। हमारी इस दुर्दशा और हीनता के कारण और उपाय बिलकुल ही भिन्न

---

* सन् १८९१ से १९०० तक सारे भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों में २५ अकाल पड़े थे जिनके कारण १९०००००० मनुष्य मरे थे।

हैं। केवल मितव्ययता हमारे इस रोग की ओषधि कदापि नहीं हो सकती।

मितव्यय करके वही मनुष्य लाभ उठा सकता है जिसकी आय उसकी वास्तविक आवश्यकताओं से कुछ भी अधिक हो। वास्तविक आवश्यकताओं में कम से कम भोजन और वस्त्र अवश्य होना चाहिए। पर जिन्हें कभी पेट भर भोजन भी न मिला हो उनसे कोई क्या मितव्यय करा सकता है! "दिगंबर क्या नहायगा और क्या निचोड़ेगा?" इसलिये हमारे देश के अधिकांश निवासियों के लिये तो यह पुस्तक किसी काम की नहीं ठहरती। पर हाँ, शेष थोड़े से लोगों के लिये जो कुछ भी सुखी कहे जा सकते हैं, यह पुस्तक बहुत उपयोगी और आवश्यक है। जिनकी आय उनकी आवश्यकता से कुछ भी अधिक हो और जो अपनी अज्ञानता और मूर्खता के कारण उस अधिक आय का कुछ भी सदुपयोग न कर सकते हों उनके लिये यह पुस्तक बड़े काम की है। इस पुस्तक के आरंभ में ही यह दिखलाया गया है कि जो मनुष्य मितव्यय करता है, वही सर्वसाधारण का बहुत कुछ उपकार भी कर सकता है। उदार और परोपकारी होने के लिये सबसे पहला आवश्यक और उपयोगी गुण मितव्यय ही है। जो लोग कुछ सुखी और मितव्यय करने में समर्थ हैं उन्हें यह पुस्तक पढ़कर तुरंत दिए उपदेशों के अनुसार कार्य्य आरंभ कर देना चाहिए, और अपने देश की दुरवस्था का ज्ञान प्राप्त

करके यथासाध्य उसके सुधार का उद्योग करना चाहिए। इसमें केवल उन्हीं का भला नहीं है बल्कि उनके समस्त देश-भाइयों और मातृभूमि का भी बहुत अधिक कल्याण है। हमारे ऊपर मातृभूमि का जो बहुत बड़ा ऋण है, उसके परि-शोध का प्रधान उपाय यही है कि हम यथासाध्य उसे उन्नत और संपन्न बनावें।

संसार की प्रत्येक वस्तु का अच्छा और बुरा दो प्रकार का उपयोग हो सकता है। वास्तव में यह भलाई और बुराई उसके उपयोग की प्रणाली पर ही निर्भर होती है। एक मनुष्य जिस पदार्थ का बहुत बुरा उपयोग करता है, दूसरा उसी से बहुत बड़ा काम निकालता है। यही दशा धन की भी है। धन से बहुत बड़े-बड़े अनिष्ट और अपकार भी हो सकते हैं और बड़े-बड़े महत्त्वपूर्ण उपकार और कार्य्य भी। विचारवान् मनुष्य उसका सदुपयोग करके उससे स्वयं लाभ उठाते तथा दूसरों का उपकार करते हैं। ऐसे ही लोग स्वयं संपन्न होते तथा अपने देश को संपन्न बनाते हैं। पर विचारहीन और दुर्गुणी मनुष्य धन की सहायता से संसार में पाप की वृद्धि के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर सकता। ऐसे लोगों के पास कभी धन नहीं ठहर सकता और जिस देश में इस प्रकार के लोगों की अधिकता होती है, वह यथेष्ट संपन्न होने पर भी कभी सुखी नहीं रह सकता। मान लीजिए कि किसी देश के निवासियों के पास धन तो यथेष्ट है पर वे उसका सदु-

पयोग करना नहीं जानते और हाथ में आते ही उसे खर्च कर देते हैं। इसमें संदेह नहीं कि एक मनुष्य का व्यय किसी न किसी मनुष्य को आय के रूप में अवश्य मिलता है। पर वह भी शीघ्र ही व्यय करके फिर दुःखी हो जाता है। इस प्रकार धन जल्दी-जल्दी लोगों के हाथ में आता और निकल जाता है और वे सदा दुःखी ही बने रहते हैं। इसलिये जो व्यक्ति धन का सदुपयोग करना नहीं जानता उसे आर्थिक सुख कभी नहीं मिल सकता। दूसरी बात यह है कि धन उसी के पास ठहरता है जो वास्तव में योग्य और उसका पात्र होता है। लोग कहते हैं कि शेरनी का दूध नहीं मिलता; और यदि संयोगवश किसी प्रकार मिल भी जाय तो सोने के पात्र के सिवा और किसी पात्र में रह नहीं सकता। ठीक यही दशा धन की भी है। धन उसी को मिलता है जो वास्तव में उसका पात्र हो। यदि अभाग्यवश किसी अपात्र को धन मिल भी जाय तो उसके पास वह कभी ठहर नहीं सकता। इसलिये जो लोग धनवान् होना चाहते हैं उन्हें सबसे पहले अपने आपको उसका योग्य पात्र बनाने की चेष्टा करनी चाहिए। यह चेष्टा और कुछ नहीं, केवल धन का सदुपयोग करना है। जो लोग धन का सदुपयोग करना सीख जायँगे वे स्वयं भी संपन्न होंगे और अपने देश को भी संपन्न बना सकेंगे। आशा है, यह पुस्तक लोगों को धन का सदुपयोग सिखाने में बहुत कुछ सहायता देगी।

अंत में विज्ञ पाठकों से मेरा निवेदन है कि इस पुस्तक में यदि उन्हें कोई दोष या त्रुटियाँ दिखाई पड़ें, तो उनका कारण वे मेरी अल्पज्ञता समझें और उनके लिये मुझे उदारतापूर्वक क्षमा करें।

काशी
१९ अप्रैल १९१४ — रामचंद्र वर्म्मा

सूची

मितव्यय

पहला प्रकरण

परिश्रम

मितव्यय का आरंभ सभ्यता के साथ-साथ हुआ। जिस समय मनुष्य को आज की भाँति कल की भी चिंता लगी, उसी समय इसकी उत्पत्ति हुई। सिक्के के आविष्कार के बहुत पहले लोग इसकी आवश्यकता स्वीकार कर चुके थे। किफायत, गृहस्थी का सुप्रबंध और उसकी सुव्यवस्था आदि इसी के अंतर्गत हैं।

व्यक्तिगत सुख की उत्पत्ति और वृद्धि करना गार्हस्थ्य मितव्यय का उद्देश्य है और किसी बड़ी जाति को धनवान और वैभवशाली बनाना दैशिक मितव्यय का काम है। गार्हस्थ और सार्वजनिक संपत्ति का मूल स्थान एक ही है। परिश्रम करने से संपत्ति मिलती है; बचत और संग्रह करने से वह सुरक्षित रहती है और दृढ़तापूर्वक कार्य्य में लगे रहने से उसकी अभिवृद्धि होती है।

प्रत्येक जाति का वैभव और सुख, व्यक्तिगत संग्रह पर ही निर्भर है। साधारण लोगों का अमितव्यय बड़े-बड़े राज्यों

को दरिद्र बना देता है। इसलिये प्रत्येक मितव्ययी को सर्व-साधारण का उपकारक और अमितव्ययी को सर्वसाधारण का शत्रु समझना चाहिए। गार्हस्थ मितव्यय की आवश्यकता निर्विवाद सिद्ध है। इस पुस्तक में उसी विषय पर विचार किया जायगा।

मितव्ययी होना कोई प्राकृतिक गुण नहीं है। बल्कि वह अनुभव, उदाहरण और दूरदर्शिता की वृद्धि का परिणाम है। वह विद्या और बुद्धि का भी प्रसाद है। जब मनुष्य विचारवान् और बुद्धिमान् होता है तभी वह मितव्ययी भी होता है। इसलिये लोगों को दरिद्र होने से बचाने का सबसे अच्छा उपाय उन्हें बुद्धिमान् बनाना है।

मितव्यय की अपेक्षा अमितव्यय मनुष्य के लिये अधिक स्वाभाविक है। असभ्य और जंगली सबसे बड़े अमितव्ययी होते हैं; क्योंकि उनमें दूरदर्शिता नहीं होती, उन्हें भविष्य का कोई ध्यान नहीं रहता। बहुत प्राचीन काल में मनुष्य कुछ भी न बचाते थे। वे गुफाओं में रहते थे और पत्थरों से जीव-जंतुओं को मारकर खा लेते थे। धीरे-धीरे उन्होंने उन्नति की और पशु-पक्षियों को सरलतापूर्वक मार लेने के लिये धार-दार और नुकीले पत्थर गढ़ लिए।

प्राचीन असभ्य जातियाँ खेती-बारी करना बिलकुल नहीं जानती थीं, भोजन के लिये अन्न संग्रह करना और दूसरे बरस की फसल के लिये भी कुछ बचा रखना मनुष्य ने बहुत पीछे

सीखा। जब खानों का आविष्कार हुआ और उनमें से अनेक प्रकार के द्रव्य निकले तब मनुष्य ने उन्हें तपा और गलाकर अनेक प्रकार के हथियार बनाए और इस प्रकार सभ्यता के साधनों की संख्या बहुत बढ़ा दी।

समुद्र-तट पर रहनेवालों ने टूटे हुए वृक्षों के बीच का भाग जलाकर उन्हें खोखला कर लिया और उन पर सवार होकर वे समुद्र में मछलियों का शिकार करने लगे। उस खोखले वृक्ष के बाद नाव बनी जिसमें लोहे के कील-काँटे जड़े गए। नाव से बड़े-बड़े बजड़े और जहाज बने और तमाम संसार को सभ्य और जनपूर्ण बनाने का मार्ग खुल गया।

यदि अपने पूर्वजों के लाभदायक परिश्रम का हमें कोई फल न दिखाई देता तो हम सदा असभ्य ही रहते। हमारे पूर्वजों ने जमीन साफ करके उसमें, खाने के लिये, अन्न उत्पन्न किया था। उन्होंने औजार और हथियार बनाए थे और विज्ञान और कला-कौशल का आविष्कार और प्रचार किया था। उन्हीं की देखा-देखी हम भी उसमें लगे और उसका उत्तम फल भी हमें मिला।

प्रकृति हमें इस बात की शिक्षा देती है कि एक बार जिस उपयोगी वस्तु का आविष्कार हो गया वह फिर कभी नष्ट नहीं होती। हमारे पूर्वजों के अनेक प्रकार के बड़े-बड़े कृत्य अब तक हमें उनका स्मरण कराते हैं। मनुष्य के परिश्रम को प्रकृति कभी नष्ट नहीं करती। यदि किसी व्यक्ति को, नहीं तो

कम से कम किसी जाति को, लाभ पहुँचाने के लिये उसका कुछ न कुछ अंश बचा रहता है।

हमारे पूर्वजों से हमें जो पार्थिव संपत्ति मिलती है केवल वही हमारे लिये यथेष्ट नहीं है। हमारा अधिकार कुछ और विस्तृत है। उसमें, मनुष्य के उद्यम और परिश्रम के लाभ-दायक फल भी सम्मिलित हैं। इन फलों की रक्षा, शिक्षा और उदाहरण द्वारा हुई है। एक पीढ़ी ने दूसरी पीढ़ी को शिक्षा दी और इस प्रकार कला-कौशल, यंत्र-विज्ञान, तथा अन्य विद्याएँ सुरक्षित रहीं। सभ्यता का यह महत्त्व-पूर्ण साधन इस प्रकार धीरे-धीरे मनुष्य-जाति का पैतृक वैभव बन गया।

अपने पूर्वजों के परिश्रम का फल प्राप्त करना हमारा अधिकार है; लेकिन जब तक हम स्वयं परिश्रम न करें तब तक हम उससे लाभ नहीं उठा सकते। परिश्रम सबको करना पड़ता है, चाहे वह हाथ से हो और चाहे मस्तिष्क से। बिना परिश्रम के जीवन वृथा है; वह केवल एक प्रकार की निद्रा है। परिश्रम से हमारा तात्पर्य्य केवल शारीरिक श्रम से नहीं है। साहस, दृढ़ता, धैर्य्य, परोपकार, सभ्यता और सत्य का प्रचार, दरिद्रों की सहायता और कष्ट से उनकी मुक्ति, आदि अनेक बहुत बड़े-बड़े काम उसमें सम्मिलित हैं।

एक बड़े विद्वान् का कथन है—"प्रत्येक महानुभाव दूसरे के परिश्रम पर निर्भर रहना बहुत अनुचित समझेगा। बल्कि जहाँ तक हो सकेगा वह सर्वसाधारण का उपकार और सेवा

करके अपने ऊपर किए हुए उपकारों का बदला चुकाने की चेष्टा करेगा, क्योंकि छोटे से लेकर बड़े तक सब श्रेणी के अच्छे और लाभदायक कामों में मस्तिष्क से, हाथ से, या दोनों से विशेष परिश्रम करना पड़ता है।"

परिश्रम केवल आवश्यक ही नहीं है बल्कि उससे मनोविनोद भी होता है। बिना परिश्रम के जो जीवन हमें भार मालूम होता, वह परिश्रम करने से बहुत आनंददायी जान पड़ता है। हमारा जीवन, कुछ अंशों में, प्रकृति के विपरीत, और कुछ अंशों में उसके अनुकूल है। पृथिवी, वायु, सूर्य्य आदि हमारे जीवन के लिये आवश्यक शक्तियों को निरंतर हममें से खींचते रहते हैं। इसलिये उनकी पूर्ति के लिये हमें भोजनादि करना, और गरम रहने के लिये कपड़ा पहनना पड़ता है।

प्रकृति हमारे साथ-साथ काम करती है। जिस भूमि को हम जोतते हैं उसे वह उसका खाद्य देती है और जिन बीजों को हम बोते और संग्रह करते हैं उन्हें वह उत्पन्न करती और पकाती है। मानुषिक परिश्रम की सहायता से वह ऊन उत्पन्न करती है जिसे हम कातते हैं और वह भोजन उत्पन्न करती है जिसे हम खाते हैं। यह बात कदापि न भूलनी चाहिए कि चाहे हम कैसे ही धनवान् या दरिद्र हों, हमारा भोजन, वस्त्र, झोंपड़ी, महल सब परिश्रम के फल हैं।

परस्पर एक दूसरे का पालन करने के लिये मनुष्य आपस में मिलते हैं। खेतिहर भूमि जोतते और अन्न उपजाते हैं;

जुलाहे कपड़ा बुनते हैं जिसे दर्जी सीकर पहनने के लिये तैयार करते हैं; राज, मिस्तरी मकान बनाते हैं जिनमें हम गार्हस्थ्य जीवन का आनंद भोगते हैं। इस प्रकार अनेक काम करने-वालों की सहायता से एक बड़ा परिणाम निकलता है।

यदि बुरी से बुरी वस्तु पर परिश्रम किया जाय तो वह तुरंत बहुमूल्य बन जाती है। वास्तव में परिश्रम ही मनुष्यता का जीवन है; उसे निकाल लीजिए, हटा दीजिए, मनुष्य-जाति मृतक हो जायगी। सेंट पाल का कथन है—"जो काम नहीं करता उसे भोजन भी न करना चाहिए।" और इस युक्ति का महत्त्व इसलिये और भी बढ़ गया कि वह व्यक्ति सदा अपने हाथ से परिश्रम करता रहा और कभी दूसरे के सिर का भार नहीं बना।

एक प्रसिद्ध कहानी है कि एक बुड्ढे खेतिहर ने मरते समय अपने तीनों आलसी लड़कों को एक बढ़िया गुप्त भेद बतलाने के लिये अपने पास बुलाया। उसने कहा—"लड़को, भूमि में बहुत सा धन गड़ा है जो मैं अभी तुम्हें देने को हूँ।" लड़कों ने पूछा—"वह कहाँ गड़ा है ?" बुड्ढे ने कहा—"मैं अभी बतलाता हूँ; उसके लिये तुमको खोदना पड़ेगा"—इतना कहते-कहते उस बुड्ढे के प्राण निकल गए और वह उन लोगों को गुप्त भेद न बतला सका। पीछे से लड़कों ने बहुत दिनों की पड़ती भूमि को खूब जोत-बोकर बहुत अच्छी जमींदारी खड़ी कर ली। उन्हें कोई खजाना तो नहीं मिला

पर वे काम करना सीख गए। उनके वृद्ध बुद्धिमान् पिता ने उन्हें जो खजाना बतलाया था उसे उन लोगों ने इस प्रकार प्राप्त कर लिया।

परिश्रम एक बोझ है, दंड है, प्रतिष्ठा है और मनोविनोद है। संभव है कि आप उसे दरिद्रता का सहचर देखें पर वहाँ भी उसमें एक विलक्षण तेज होगा। यही नहीं बल्कि वह हमारी प्राकृतिक आवश्यकताओं का अच्छा प्रमाण है। यदि परिश्रम न होता तो मनुष्य, जीवन और सभ्यता में कुछ भी न रह जाता। कला, साहित्य, विज्ञान आदि, मनुष्य में जितनी अच्छी बातें हैं वे सब परिश्रम से ही होती हैं। "स्वर्ग तक पहुँचानेवाला" ज्ञान, परिश्रम से ही प्राप्त होता है। गाढ़ परिश्रम करने की योग्यता का ही नाम प्रतिभा है। वह बड़े-बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य्य करने की शक्ति है। संभव है कि परिश्रम एक दंड सा मालूम हो पर वह भी तेजपूर्ण है। जो लोग पवित्र कार्य्यों के लिये, बहुत ऊँचे उद्देश्य रखकर, परिश्रम करते हैं उनके लिये वही पूजा-पाठ है, वही कर्त्तव्य है, वही सम्मान है और वही मुक्ति है।

कुछ लोग इस बात का बिलकुल ध्यान नहीं रखते कि परिश्रम करना केवल दैवी इच्छा के अनुकूल ही नहीं है बल्कि बुद्धि बढ़ाने और प्रकृति का आनंद लेने के लिये वह परम आवश्यक भी है; लोग बिना विचारे परिश्रम के नियम से घबराते और उनकी शिकायत करते हैं। संसार में सबसे

अधिक अभागे वे ही लोग हैं जो निकम्मे हैं, जिनका जीवन उपयोगिता से बिलकुल शून्य है और जिन्हें अपनी इंद्रियों को सुखी करने के सिवा और कोई काम नहीं है। ऐसे ही लोग सबसे अधिक झगड़ालू, दुष्ट और असंतुष्ट होते हैं; अपने और दूसरों के लिये समान रूप से व्यर्थ होते हैं और पृथिवी का बोझ बने रहते हैं; उनके मरे पीछे उनके लिये न तो कोई शोक करता है और न कोई उनका ध्यान ही करता है। वास्तव में निकम्मे आदमी बड़े ही अभागे और तुच्छ होते हैं।

केवल काम करनेवालों ने ही संसार को इतना उन्नत और अग्रसर किया है। उन्नति, सभ्यता, सुख, वैभव आदि सब कुछ परिश्रम पर ही निर्भर हैं; जौ की बालें उपजाने से लेकर बड़ा जहाज तैयार करने तक, छोटे-बड़े सब काम विचार-पूर्वक परिश्रम करने से ही होते हैं। इसी प्रकार सब उपयोगी और सुंदर विचारों की उत्पत्ति परिश्रम, अध्ययन, अनुभव, अनु-संधान और बुद्धि से होती है। सब तरह के काम लगातार बहुत अधिक परिश्रम करने से होते हैं। केवल आवेशपूर्ण होने से कोई बड़ा काम नहीं होता। उसके लिये अनेक बार चेष्टाएँ करनी पड़ती हैं जिनमें बहुधा सफलता भी नहीं होती। एक पीढ़ी कोई काम आरंभ करती है और दूसरी उसे जारी रखती है। कार्य्य आरंभ करने के समय तो लोगों की चेष्टाएँ निष्फल ही होती हैं; पर धैर्यपूर्वक उसमें लगातार लगे रहने से अंत में अवश्य कृतकार्यता होती है।

परिश्रम के इतिहास में सभी उदाहरण एक समान हैं। परिश्रम करने से दरिद्र से दरिद्र आदमी यदि प्रसिद्ध न हो, तो भी प्रतिष्ठित अवश्य हो जाता है। कला, साहित्य और विज्ञान के इतिहास में परिश्रम करनेवाले ही सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। किसी ने करघे बनाए, किसी ने भाप के इंजिन तैयार किए और किसी ने और-और आविष्कार किए और इस प्रकार हमारे लिये बहुत सी उपयोगी चीजें तैयार हो गईं।

काम करनेवालों से हमारा तात्पर्य केवल उन लोगों से नहीं है जो शारीरिक परिश्रम करते हैं। शारीरिक परिश्रम तो एक घोड़ा भी कर सकता है। लेकिन वास्तव में काम करनेवाला वही आदमी है जो अपने मस्तिष्क का भी उपयोग करता है और जिसके सब काम उच्च शक्तियों की प्रेरणा से होते हैं। चित्र खींचनेवाले, पुस्तकें रचनेवाले, राजनियम बनानेवाले, कविता करनेवाले सभी उच्च श्रेणी का काम करते हैं। समाज की शारीरिक शक्ति की रक्षा करने के लिये चाहे वे लोग खेतिहर या गड़ेरिये की भाँति उपयोगी न हों पर तो भी समाज को ऊँचे दरजे का ज्ञान प्रदान करने के कारण उनका महत्त्व कम नहीं है।

परिश्रम की महत्ता और आवश्यकता के संबंध में इतना कहकर अब हम यह दिखलाना चाहते हैं कि उससे होनेवाले लाभों का क्या उपयोग होता है। यह बात स्पष्ट है कि यदि मनुष्य के पास, उसके पूर्वजों का किया हुआ कला, आविष्कार,

बुद्धि, ज्ञान आदि का संग्रह न होता तो वह अवश्य ही असभ्य रह जाता।

संसार की सभ्यता उसके संचय से ही बनी है। परिश्रम का परिणाम संग्रह है। पहले कहा जा चुका है कि मितव्यय का आरंभ सभ्यता के साथ-साथ हुआ; यह भी कहा जा सकता है कि सभ्यता की उत्पत्ति मितव्यय से ही हुई। मितव्यय से मूलधन या पूँजी की उत्पत्ति होती है। पूँजी उसी के पास रहती है जो अपनी सारी आय नहीं खर्च कर देता। लेकिन मितव्यय कोई स्वाभाविक गुण नहीं है। यह व्यवहार का, प्राप्त किया हुआ, तत्त्व है। इसमें भविष्य के लाभ के लिये उपस्थित या वर्त्तमान आनंद का त्याग करके वासनाओं को वश में रखना पड़ता है। आज का काम तो उससे चलता ही है; इसके सिवा वह कल के लिये भी हमारा प्रबंध करता है। संग्रह किए हुए मूलधन को वह काम में लगाता और भविष्य में उससे हमें लाभ दिलाता है।

एक विद्वान् का कथन है—"विचार के द्वारा मनुष्य को भविष्य का ध्यान रखने का अधिकार मिला है; इसी अधिकार ने उसे भविष्य का प्रबंध करने का काम दिया है। भविष्य का ज्ञान प्राप्त कर लेना कोई बड़ी बात नहीं है; लेकिन उसके लिये पहले से तैयार हो जाना ही बड़ा भारी गुण है।"

लेकिन अधिकांश मनुष्य भविष्य की कोई चिंता नहीं करते। वे बीते हुए समय का भी ध्यान नहीं रखते। वे केवल

वर्त्तमान को ही देखते हैं। जितना धन वे पैदा करते हैं उतना सब खर्च कर डालते हैं; उसमें से बचाते कुछ भी नहीं। न तो वे अपना ही कोई प्रबंध करते हैं और न अपने परिवार का ही। चाहे वे उपार्जन अधिक कर सकते हों, पर जितना उपार्जित करते हैं उतना ही वे खा-पी भी डालते हैं। ऐसे मनुष्य सदा निर्धन बने रहते हैं और दरिद्रता कभी उनका पीछा नहीं छोड़ती।

यही दशा बड़ी-बड़ी जातियों की है। जो जातियाँ अपनी सारी आमदनी खर्च कर देती हैं और भविष्य के लिये कुछ भी नहीं बचातीं उनके पास पूँजी नहीं रहती। वे भी सदा दरिद्र ही बनी रहती हैं। न तो उनका व्यापार चलता है और न उनके पास सभ्यता या उन्नति के और साधन होते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि सभ्यता की उत्पत्ति किफायत और परिश्रम से होती है।

अपने देश भारतवर्ष को ही लीजिए। पुराने जमाने में यहाँ जिन खेतों में पचास मन अन्न होता था, आजकल उनमें बारह मन भी कठिनता से होता है। जो भारत किसी समय स्वर्ण भारत कहलाता था वह आज दरिद्रों से भरा हुआ है। जिन भारतवासियों का व्यापार किसी दिन सारे संसार में हुआ करता था वे आज एक सूई के लिये भी दूसरों का मुँह ताकते हैं। इतने बड़े अंतर का कारण केवल परिश्रम का अभाव ही है। यदि हम सब काम छोड़कर आलसी न बन जाते और

कला-कौशल, व्यापार आदि में संसार की अन्य जातियों का सदा सामना करते रहते तो कभी हमारी यह दशा नहीं होती।

यह हाल उस जाति का है जो सैकड़ों-हजारों बरसों से पराधीन चली आई है। अब एक स्वतंत्र देश का हाल सुनिए। यूरोप में स्पेन नामक एक राज्य है। यहाँ की भूमि बहुत उपजाऊ है। किसी समय उस देश के निवासी बहुत सम्पन्न थे पर आज वहाँ भिखारियों और दरिद्रों की ही अधिकता है। इसका कारण भी यही है कि वे लोग धैर्यपूर्वक परिश्रम करना नहीं चाहते। कुछ अशक्त और कुछ अभिमानी होने के कारण वे कोई काम तो नहीं करते, पर भीख माँगने में उन्हें जरा भी लज्जा या संकोच नहीं है।

संसार में हम दो तरह के आदमी देखते हैं; एक निर्धन और एक धनवान्, एक खर्चीले और एक किफायती, एक सुखी और एक दुःखी। यह भेद भी उसी परिश्रम के कारण है।

जो लोग परिश्रम करके कुछ धन बचा लेते हैं उनके पास अच्छी पूँजी हो जाती है जिसकी सहायता से वे एक नया काम खड़ा कर सकते हैं। उस काम में, मेहनत-मजदूरी करने के लिये और लोग भी आ लगते हैं और इस प्रकार देश का बनिज-व्यापार बढ़ने लगता है।

किफायत करनेवाले ही संसार के सब काम करते हैं। वे ही बड़े-बड़े महल बनाते हैं और वे ही भारी-भारी कारखाने चलाते हैं। रेलों, जहाजों और खानों का प्रबंध भी वे ही

करते हैं, जिसके कारण असंख्य लोगों को काम मिलता और उनका निर्वाह होता है। तात्पर्य्य यह कि बिना किफायत के संसार का कोई काम नहीं होता। जो किफायती नहीं है वह संसार की उन्नति में भी कोई सहायता नहीं दे सकता। वह चाहे जितना धन पैदा कर ले पर न तो वह किसी दूसरे की सहायता कर सकता है और न अपनी ही दशा सुधार सकता है। उलटे उसे दूसरों की सहायता और कृपा पर निर्भर रहना पड़ता है और वह किफायत करनेवालों का दास बना रहता है।

दूसरा प्रकरण

मितव्यय का अभ्यास

सुख सबको मिल सकता है पर उसके पाने के लिये उचित और योग्य उपाय की आवश्यकता है। जिनकी आय साधारणतः अच्छी हो वे भी पूँजीवाले बनकर संसार को उन्नत और सुखी करने में सहायक हो सकते हैं। लेकिन अपनी और अपने देश की उन्नति करने के लिये आदमी को मेहनती, सच्चा और किफायती होना चाहिए।

इस समय धन के अभाव से समाज उतना दुःखी नहीं है जितना धन के अपव्यय से। रुपया पैदा करना कठिन नहीं है जितना कि खर्च करना। केवल अधिक आय से ही मनुष्य धनवान् नहीं हो जाता; धनी होने के लिये खर्च करने का ढंग जानना चाहिए। जब मनुष्य परिश्रम करके अपनी आवश्यकता से अधिक धन कमाता और उसमें से कुछ बचा लेता है तब वह अवश्य समाज को सुखी कर सकता है, बचत चाहे थोड़ी ही हो पर वह मनुष्य को स्वतंत्र अवश्य बना देती है।

अधिक धन कमानेवाला निस्संदेह बहुत कुछ बचा सकता है। उसे केवल अपनी वासनाओं को वश में रखना और मितव्ययी होना चाहिए। जितने बड़े-बड़े व्यापारी और धन-वान् दिखाई देते हैं वे सब इसी श्रेणी के हैं। काम करने-

वाला आदमी चाहे तो बहुत कुछ बचा सकता है और नहीं तो सब खर्च कर सकता है। यदि वह बुद्धिमत्ता से कुछ बचा सकता है तो उसे अपनी पूँजी को किसी उपयोगी और लाभदायक व्यवसाय में लगाने का अच्छा अवसर भी मिल ही जाता है।

धन के मितव्यय की भाँति समय का मितव्यय भी आवश्यक और लाभदायक है। जो व्यक्ति धन कमाना चाहता है उसे समय का सद्व्यय करना चाहिए। पढ़ने, लिखने, कला, और विज्ञान सीखने, साहित्य का अध्ययन करने तथा अन्य उत्तम कार्य्यों में समय लगाया जा सकता है। यदि सब कामों का समय और क्रम निश्चित कर लिया जाय तो अवश्य ही उसका बहुत अच्छा परिणाम हो सकता है। हर एक कामकाजी आदमी को चाहिए कि वह अपने लिये एक उपयुक्त क्रम बना ले और सदा उसी के अनुसार कार्य्य करे। सब चीजों के लिये एक निश्चित स्थान और सब कामों के लिये एक निश्चित समय होना चाहिए और स्थान या समय आदि के क्रम में किसी प्रकार की शिथिलता न होनी चाहिए।

मितव्यय की उपयोगिता निर्विवाद सिद्ध है। यह भी सब लोग स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति मितव्ययी हो सकता है। हम नित्य ऐसे अनेक उदाहरण देखा करते हैं। जब एक आदमी किफायत से काम चला सकता है तब दूसरा भी अवश्य चला सकता है। इसके सिवा किफायती होने में

हमें कोई कष्ट भी नहीं होता। उलटे हम बहुत से अपमान और अप्रतिष्ठा से बच जाते हैं। उसके लिये हमें अनावश्यक वासनाओं की पूर्त्ति से अवश्य बचना पड़ता है पर आवश्यक आनंद भोगने में उससे कोई बाधा नहीं पड़ती। यही नहीं बल्कि उसकी सहायता से हमें अनेक ऐसे सात्विक आनंद मिलते हैं जो फजूल खर्च होने से कभी नहीं मिल सकते।

यह कोई नहीं कह सकता कि वह किफायत करने में असमर्थ है। ऐसे लोग बहुत ही कम हैं जो महीने भर में कुछ भी न बचा सकते हों। यद्यपि बहुत से भारतवासियों को भर पेट अन्न भी नहीं मिलता पर तो भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो महीने भर में पाँच रुपए भी न बचा सकते हों। यदि पाँच रुपया मासिक जमा किया जाय तो बीस बरस में १२००) हो जाता है; और दस बरस बाद सूद-ब्याज मिला-कर यह रकम दूनी हो जाती है। यदि आप ५) मासिक नहीं बचा सकते तो २) ही बचाइए, १) ही बचाइए, पर कुछ न कुछ बचाइए अवश्य। बीस-पचीस बरस बाद उसी से अच्छी रकम खड़ी हो जायगी। इसमें यदि आवश्यकता है तो केवल अपनी वासनाओं को वश में रखने की और मितव्यय का अभ्यास डालने की।

मितव्यय के लिये किसी विशेष साहस, बुद्धिमत्ता या दूसरे दैवी गुण की आवश्यकता नहीं है। उसके लिये केवल साधारण समझदारी और वासनाओं को वश में रखने की

शक्ति होनी चाहिए। उसके लिये बहुत अधिक दृढ़ निश्चय की आवश्यकता नहीं है; केवल थोड़ा धैर्य और संतोष चाहिए। उसका केवल आरंभ करना ही बहुत कठिन है। पर ज्यों-ज्यों उसका अभ्यास डाला जाय त्यों-त्यों वह सरल होता जाता है। और साथ ही उसके लिये आपको अपना मन मारने का जो थोड़ा कष्ट उठाना पड़ा है उसके बदले में भी वह आपको बहुत सा लाभ पहुँचा देता है।

आप पूछ सकते हैं कि थोड़ी आमदनीवाले आदमी के लिये, जिसे अपनी कमाई की पाई-पाई परिवार के पालन करने में खर्च करनी पड़ती है, यह कब संभव है कि वह बचत करके कुछ धन संग्रह कर ले? लेकिन बात यह है कि बहुत से लोग अनावश्यक व्यय को रोककर अपनी कमाई में से अवश्य कुछ न कुछ बचा लेते हैं। और यदि कुछ लोग बिना आवश्यक आनंद और सुख का त्याग किए ही कुछ बचत कर सकते हैं तो जरूरी बात है कि और लोग भी उसी ढंग पर ऐसा कर सकते हैं।

यदि अच्छी आमदनीवाला एक आदमी अपनी सारी कमाई अपने भोग-विलास या परिवार के पालन में ही खर्च कर दे और भविष्य के लिये कुछ भी न बचा रखे तो विचार करने की बात है कि उसका यह काम कितना स्वार्थपूर्ण है। जब हम सुनते हैं कि एक अच्छी आमदनीवाला आदमी मर गया और अपने परिवारवालों के लिये दरिद्रता के सिवा और

कुछ भी नहीं छोड़ गया तब हमें कहना पड़ता है कि वह बड़ा भारी स्वार्थी और अपव्ययी था। पर तो भी बहुत कम लोग इन बातों पर विचार करते हैं। प्राय: ऐसे लोगों के परिवार के लिये चंदा करना पड़ता है और वह परिवार सदा दरिद्रता का कष्ट झेलता रहता है।

लेकिन अगर थोड़े विचार से भी काम लिया जाय तो ऐसे भयंकर परिणाम की नौबत नहीं आ सकती। यदि थोड़ा-सा स्वार्थत्याग कर—भाँग, तंबाकू आदि का खर्च रोककर—मनुष्य चाहे तो अपने ऊपर धन व्यर्थ नष्ट करने के बदले औरों के पालन के लिये अवश्य कुछ न कुछ बचा सकता है। यदि सच पूछिए तो गरीब से गरीब आदमी का यह धर्म्म है कि वह अपने और अपने परिवार के लोगों के लिये कुछ न कुछ धन अवश्य बचा रखे और कष्ट, रोग तथा अन्य आपत्ति के अवसरों पर उसे काम में लावे।

धनवान् हो सकनेवाले लोग कम हैं; लेकिन मेहनत और किफायत करके अपनी आवश्यकता के अनुसार धन कमा लेनेवाले लोग अधिक हैं। ऐसे लोग यदि कुछ बचाना चाहें तो वे उतना अवश्य बचा सकते हैं जितना उन्हें बुढ़ापे में विपत्ति और दरिद्रता से बचाने में यथेष्ट हो। किफायत करने के लिये किसी विशेष अवसर की आवश्यकता नहीं है; उसमें केवल इच्छा-शक्ति चाहिए। लोग अपने शरीर या मस्तिष्क से परिश्रम तो बहुत अधिक करते हैं पर वे अपना अपव्यय नहीं रोक सकते।

अधिक संख्या प्रायः ऐसे ही लोगों की निकलेगी जो अपनी वासनाओं को न रोकना चाहेंगे और आनंद-विलास करना ही अधिक पसंद करेंगे। वे लोग अपनी सारी कमाई योंही खर्च कर देंगे। यह दशा केवल थोड़ी आयवाले लोगों की ही नहीं है। हम लोग यहाँ तक देखते और सुनते हैं कि सैकड़ों रुपये मासिक पानेवाले लोगों के मरने के बाद उनके परिवार के पास एक पैसा नहीं बचा। उनके मरते ही घर की चीजें बिकने लगीं और इस बिक्री से जो रुपया मिला वह उनके क्रिया-कर्म्म करने और ऋण चुकाने में लगा।

और-और उपयोगों के सिवा धन से एक और बहुत बड़ा काम निकलता है। उसकी सहायता से मनुष्य स्वतंत्र हो जाता है। इस विचार से देखिए तो वह बहुत महत्त्व की चीज है। एक विद्वान् का कथन है—"धन की ओर से कभी ला-परवाही मत करो। धन ही मनुष्य का आचरण है।" सुजनता, परोपकारिता, न्यायपरायणता, प्रामाणिकता और दूरदर्शिता आदि मनुष्य के अनेक उच्च गुण धन के सद्व्यय पर ही निर्भर हैं। इसी प्रकार धन के अपव्यय से लोभ, अन्याय, अनर्थ, दरिद्रता आदि अनेक दुर्गुण उत्पन्न होते हैं।

जो लोग अपनी सारी कमाई योंही खर्च कर देते हैं उनका कभी पूरा नहीं पड़ता और वे सदा दरिद्र बने रहते हैं। वे सदा दीन बने रहते हैं और अपनी प्रतिष्ठा खो देते हैं। वे

कभी स्वतंत्र नहीं हो सकते। केवल अपव्ययी होना ही मनुष्य को अनेक गुणों से वंचित रखने के लिये यथेष्ट है।

लेकिन जो आदमी थोड़ा सा भी धन बचा लेते हैं उनकी स्थिति बिलकुल बदल जाती है। वही धन उनका बड़ा भारी बल हो जाता है। वे समय और भाग्य के बंधन से निकल जाते हैं और साहसपूर्वक सबका सामना कर सकते हैं। अपने मालिक वे आप होते हैं और किसी के अधीन नहीं रहते। वृद्धावस्था में उनका समय सुख और आनंद से बीतता है।

ज्यों-ज्यों मनुष्य बुद्धिमान् और विचारवान् होते जाते हैं त्यों-त्यों वे संपन्न और मितव्ययी भी बनते जाते हैं। अविचारी मनुष्य, जंगलियों की भाँति, जो कुछ पाता है सब खर्च कर देता है और भविष्य या कष्ट के दिनों का कुछ भी ध्यान नहीं रखता। लेकिन बुद्धिमान् अपने भविष्य का ध्यान रखता है, सुख के समय कष्ट के दिनों का प्रबंध कर लेता है और विपत्ति पड़ने पर अपने संबंधियों का पालन करता है।

विवाह करके मनुष्य अपने ऊपर बड़ा भारी उत्तरदायित्व ले लेता है; पर बहुत से लोग इस उत्तरदायित्व पर अधिक विचार नहीं करते। शायद उनका अधिक विचार न करना ही अच्छा है। यदि ऐसी बातों पर लोग बहुत अधिक विचार करने लगें तो संभव है कि वे विवाह करना ही छोड़ दें और इस प्रकार इस उत्तरदायित्व से बच जायँ। लेकिन जब मनुष्य विवाह कर लेता है तब उसे ऐसा प्रबंध करना

चाहिएं जिसमें उसके परिवार को कभी कष्ट न हो और उसके अशक्त हो जाने या मरने पर परिवार के लोग समाज के बोझ न बन जायँ।

इस विचार से मितव्यय एक बहुत आवश्यक कर्त्तव्य है। जो मितव्यय नहीं करते वे न्यायवान् या ईमानदार नहीं रह सकते। स्त्रियों और बच्चों के भरण-पोषण का प्रबंध न करना निर्दयता है। चाहे अज्ञता से ही यह निर्दयता क्यों न उत्पन्न हो, पर तो भी वह क्षम्य नहीं है। एक व्यक्ति अपनी सारी कमाई व्यर्थ नष्ट करके मर जाता है और अपने परिवार के लोगों को भीख माँगने के लिये छोड़ जाता है। भला इससे बढ़कर और कौन सी निर्दयता हो सकती है? तथापि सब श्रेणियों के लोगों में यह दोष वर्त्तमान है। निम्न, मध्यम और उच्च, सभी श्रेणियों के लोग इसके लिये समान रूप से दोषी हैं। वे अपने सामर्थ्य से बाहर खर्च करते हैं। वे धनवान् होने की बहुत चेष्टा करते हैं और इस चेष्टा में भी उनका उद्देश्य यही रहता है कि वे अमीर होकर अधिक खर्च कर सकें; पर इसमें उन्हें सफलता नहीं होती। ऐसे लोग आमदनी की सदा शिकायत करते रहते हैं पर वे इस बात का ध्यान नहीं करते कि उनका खर्च बहुत बढ़ा-चढ़ा है। वास्तव में हम लोग अपनी योग्यता से अधिक व्यय करते हैं, हम अपना धन पानी में बहा देते हैं और कभी-कभी अपव्यय के लिये अपनी जान तक दे देते हैं।

बहुत से लोग धन उपार्जन करने में तो बहुत कुशल होते हैं पर वे उसका सद्व्यय करना नहीं जानते। कमाने में तो उनकी बुद्धिमत्ता का अच्छा परिचय मिलता है पर खर्च करने में शायद उनकी बुद्धि कुछ भी काम नहीं करती। असल बात यह है कि आनंद-विलास में वे लोग फँस जाते हैं और परिणाम का कुछ भी ध्यान नहीं रखते। यदि परिणाम पर दृष्टि रखकर लोग सचेत रहने का दृढ़ निश्चय कर लें तो सारी कठिनता दूर हो सकती है।

जब हमें अपनी और अपने अधीन लोगों की सामाजिक स्थिति सुधारने की चिंता होती है तभी प्रायः हम मितव्यय भी आरंभ करते हैं। हमारे मितव्ययी होते ही सब प्रकार के अपव्यय छूट जाते हैं। यदि हम कोई अनावश्यक चीज बहुत ही सस्ते दामों पर भी मोल लें तो वह हमारे लिये महँगी ही है। छोटे-छोटे खर्च भी बढ़कर बहुत अधिक हो जाते हैं। यदि आज हम कोई अनावश्यक चीज मोल ले लें तो आगे चलकर हम और भी अनेक प्रकार का अपव्यय करना सीख जायँगे।

सिसरो का कथन है—"जिसे चीजें खरीदने की सनक नहीं है वह एक जागीर का मालिक है।" बहुत से लोग इसी प्रकार के अपव्यय में नष्ट हो जाते हैं। "यह चीज बहुत सस्ती है; चलो ले लें।" यदि आप पूछें कि इसे लेकर क्या करोगे? तो उत्तर मिलेगा—"नहीं, अभी तो इसकी कोई

विशेष आवश्यकता नहीं है; पर कभी न कभी यह बड़े काम आवेगी।" इसी तरह लोग अनेक प्रकार की नई, पुरानी, अच्छी, बुरी चीजें मोल लेकर अपना घर भर लेते हैं और दरिद्रता के पंजे से छूट नहीं सकते।

युवा और अधेड़ अवस्था में मनुष्य को अपनी वृद्धावस्था के सुख और आनंद का उचित प्रबंध कर लेना चाहिए। जिस व्यक्ति ने अपने जीवन का बहुत सा भाग अच्छी तरह खाने-पहनने और खर्च करने में बिताया हो, वह यदि वृद्धावस्था में अपने पड़ोसियों या और लोगों की रोटियों पर गुजारा करे तो इससे बढ़कर और कोई दुःखदायी बात नहीं हो सकती। ऐसी बातों के विचार से मनुष्य अपने आरंभिक जीवन में भविष्य के सुख के लिये धन संचय करने का दृढ़ निश्चय कर सकता है।

वास्तव में मनुष्य को युवावस्था में थोड़ा खर्च करना चाहिए और वृद्धावस्था में अपनी आय का ध्यान रखते हुए उदार बन जाना चाहिए। युवावस्था में मनुष्य के सामने बहुत बड़ा भविष्य होता है और इस बीच में वह खूब किफायत कर सकता है; लेकिन वृद्धावस्था में मनुष्य का जीवन समाप्ति पर होता है और उसे सब कुछ इसी संसार में छोड़ जाना पड़ता है। लेकिन लोग प्रायः ऐसा नहीं करते। युवावस्था में ही लोग अपने वृद्ध पिता से भी बढ़कर उदार बनना चाहते हैं। जिस स्थान पर पिता अपना कार्य्य समाप्त

करता है, पुत्र उसी स्थान से आरंभ करना चाहता है। उसके पिता ने उसकी अवस्था में जितना व्यय किया था, वह उससे कहीं अधिक बढ़कर उसी अवस्था में करना चाहता है और फल यह होता है कि वह बहुत शीघ्र ऋण से लद जाता है। तब वह जल्दी-जल्दी ढेर सा धन कमाने की चिंता करता है, अधिक व्यापार करता है और तुरंत सब कुछ खो बैठता है। इस प्रकार वह अनुभव प्राप्त करता है; लेकिन यह अनुभव सुकर्म्म का नहीं बल्कि कुकर्म्म का फल है।

सुकरात कहता है कि जो लोग केवल आवश्यक कार्य्यों में अपना धन व्यय करते हैं, गृहस्थ को उचित है कि वह उन्हीं को अपना आदर्श माने। दो आदमी ऐसे हैं जिनकी आय, स्थिति और व्यय आदि सभी समान हैं। उनमें से एक कहता है कि मैं कुछ भी नहीं बचा सकता और दूसरा थोड़ा-थोड़ा बचाकर कुछ दिनों में अच्छी पूँजी इकट्ठी कर लेता है। इसी पूँजी इकट्ठी करनेवाले को हमें अपना आदर्श मानना चाहिए।

अपना अधिकांश जीवन घोर दरिद्रता में बितानेवाले एक व्यक्ति का कथन है कि धनी बनने का सबसे अच्छा उपाय किफायती होना है। दरिद्रता से सुकर्म्म करने की शक्ति इतनी अधिक नष्ट हो जाती है कि वह मनुष्य के लिये सब प्रकार से त्याज्य है। इसलिये निश्चय कर लो कि दरिद्र नहीं बनेंगे और चाहे जिस प्रकार हो, थोड़ा खर्च करेंगे। जो

स्वयं दूसरों की सहायता का इच्छुक है वह औरों की क्या सहायता करेगा ? दूसरों को देने से पहले हमें अपने पास यथेष्ट संग्रह कर लेना चाहिए। दरिद्रता को मनुष्य के सुख का बड़ा भारी शत्रु समझना चाहिए। स्वतंत्रता को वह निश्चय नष्ट कर देती है और हमें अनेक गुणों से वंचित रखती है। बिना मितव्यय के कोई धनी नहीं हो सकता लेकिन मितव्यय से बहुत कम लोग निर्धन होते हैं।

जब मितव्यय को आवश्यक कर्त्तव्य समझ लिया जाय तब वह फिर कभी भार नहीं मालूम पड़ता है और जिन लोगों ने पहले कभी ऐसा नहीं किया है वे लोग जब देखेंगे कि उनके पास थोड़ा सा रुपया होते ही उनकी सामाजिक स्थिति, विचार-शक्ति और व्यक्तिगत स्वतंत्रता कितनी अधिक बढ़ जाती है तब वे लोग चकित हो जायँगे।

मितव्यय की चेष्टा करने में कुछ शोभा मालूम पड़ने लगती है। स्वयं उसका अभ्यास ही उन्नतिशील है। वह हमें इंद्रियों को वश में रखना सिखलाता है, हमारे चरित्र को पुष्ट करता है और चित्त को व्यवस्थित रखता है। इसके अतिरिक्त उसकी सहायता से हम सुखी और निश्चित रहते हैं। कुछ लोग कह सकते हैं कि किफायत करना हमारे लिये असंभव है। लेकिन यही असंभव समझना मनुष्यों और जातियों का नाश करता है। मान लीजिए कि आप दो आना रोज पान, सुरती, भाँग आदि में खर्च करते हैं तो बीस वर्ष में

प्राय: एक हजार रुपया आपकी गाँठ से निकल गया। और यदि आपकी ही भाँति खर्च करनेवाले हजार दो हजार आदमी भी निकल आए तो अवश्य ही जाति या देश का बहुत अधिक धन व्यर्थ नष्ट हो गया।

जिस व्यक्ति को अपनी मान-मर्य्यादा का कुछ भी ध्यान है वह अवश्य अपने परिवार के लोगों के भरण-पोषण का प्रबंध स्वयं ही करेगा, क्योंकि इसी पर उसकी सारी प्रसन्नता, सारा सुख निर्भर है। अपने सुख-संतोष और मान के विचार से उसे किफायत करनी ही पड़ेगी। इसके सिवा, यदि न्याय-पूर्वक देखा जाय तो हमें केवल अपने आपका ही ध्यान नहीं रखना चाहिए बल्कि यह भी सोचना चाहिए कि औरों के प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है। प्रकृति ने हमें बुद्धि और शक्ति प्रदान करके बड़ा बनाया है; अपना यह महत्त्व हमें कभी भूलना न चाहिए।

हर एक आदमी को अपने शरीर, चित्त और चरित्र की मर्य्यादा का ध्यान रखना चाहिए। आत्माभिमान ही उन्नति की पहली सीढ़ी है। वह मनुष्य को उन्नत होने, आगे बढ़ने और अपनी दशा सुधारने के योग्य बनाता है। इसके अति-रिक्त पवित्रता, शुद्धता, प्रामाणिकता, विचारशीलता आदि अनेक गुण आत्माभिमान से ही उत्पन्न होते हैं। अपने विषय में तुच्छ विचार रखना अपने आपको अवनत करना है; कभी-कभी उससे बड़ी अकीर्त्ति तक हो जाती है। हर एक आदमी

कुछ न कुछ अपनी सहायता कर सकता है। संसार-सागर की लहरों के अधीन पड़े रहने के लिये ईश्वर ने हमें तिनका नहीं बनाया है। उसने हमें कार्य्य करने की स्वतंत्रता और लहरों की परवाह न करके आगे बढ़ने की शक्ति दी है और हमें इस योग्य बनाया है कि हम अपने लिये रास्ता बना लें। हम लोग उन्नत हो सकते हैं, अपने विचारों को सुधार सकते हैं, अच्छे-अच्छे कार्य्य कर सकते हैं और आपत्ति से बचने का प्रबंध कर सकते हैं। अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़कर और उत्तम-उत्तम उपदेश सुनकर हम अपने विचार और उद्देश्य उच्च बना सकते हैं।

अपनी उन्नति करना मानों संसार को उन्नत बनाना है। जो अपनी उन्नति करता है वह संसार के वास्तविक मनुष्यों की संख्या में एक की वृद्धि करता है। यदि सब लोग अलग-अलग अपनी उन्नति करें तो सारा जगत् आप ही उन्नत हो जायगा। व्यक्तिगत उन्नति से ही सामाजिक उन्नति होती है। यही नहीं, बल्कि जो आदमी स्वयं उन्नत हो जाता है वह अपने साथ संबंध रखनेवाले और लोगों को भी सुधार लेता है। उसकी बुद्धि और शक्ति बढ़ जाती है और वह दूसरों के सुधारने योग्य दोषों को समझ लेता है और उन्हें बहुत कुछ सहायता दे सकता है। अपना कर्त्तव्य पालन कर चुकने पर वह दूसरों को कर्त्तव्य-पालन के लिये उत्तेजित कर सकता है। पर जो स्वयं ही रोगी हो वह दूसरों की क्या चिकित्सा

करेगा ? तात्पर्य्य यह कि यदि हम किसी प्रकार का सुधार या उन्नति करना चाहते हों तो हमें स्वयं आगे बढ़कर आदर्श बनना चाहिए; अपने ही उदाहरण से हमें औरों को शिक्षा देनी चाहिए। यदि हम दूसरों को उन्नत करना चाहते हों तो हमें स्वयं उन्नत होना चाहिए।

मनुष्य के जीवन का कोई भरोसा नहीं है, इसलिये विपत्ति के दिनों का प्रबंध कर लेना परम आवश्यक है। यह हमारा केवल नैतिक या सामाजिक ही नहीं बल्कि धार्म्मिक कर्त्तव्य भी है। जो व्यक्ति अपने और अपने आश्रितों के भरण-पोषण का प्रबंध नहीं करता उसे अधर्म्मी और नास्तिक समझना चाहिए। हट्टा-कट्टा और निरोगी मनुष्य भी क्षण भर में किसी रोग या आघात से मर सकता है। जीवन अनिश्चित है और मृत्यु निश्चित है। संसार के सब छोटे-बड़े काम प्रकृति के नियम के अनुसार होते हैं। उन नियमों को समझना और उनके अनुसार कार्य्य करना हमारा काम है। नित्य होनेवाली आसपास की घटनाओं को देखकर हमें जान लेना चाहिए कि विपत्ति सदा हमारे सिर पर तैयार रहती है; कोई निश्चय नहीं है कि वह कब हम पर आ पड़े। इसलिये उस विपत्ति से रक्षा पाने का हमें पहले ही उपाय कर लेना चाहिए। यदि हम अज्ञतावश उसका प्रबंध न करेंगे तो हमारे लिये ईश्वर अपने नियमों में कभी परिवर्त्तन न करेगा और फल यह होगा कि हम बहुत अधिक कष्ट उठावेंगे। इस

कष्ट से बचने के लिये ईश्वर ने हमें विचारशक्ति दी है और यदि हम उससे काम न लें तो उसका दंड हमको ही भुगतना पड़ेगा।

प्राय: लोग दूसरों से सहायता माँगा करते हैं; पर उनका यह माँगना केवल तुच्छ ही नहीं बल्कि व्यर्थ भी है। विशेषत: ऐसी दशा में जब कि वह व्यक्ति थोड़ी सावधानी से ही अपना अच्छा प्रबंध कर सकता हो तब उसका सहायता माँगना और भी बुरा जान पड़ता है। बहुत से लोग अभी यह नहीं जानते कि ज्ञान, स्वतंत्रता, संपन्नता आदि उन्हीं के अंग से उत्पन्न होते हैं। उन्हें संपन्न और स्वतंत्र बनाने में शासक बहुत कम सहायता दे सकते हैं। जो व्यक्ति दूसरों से सहायता चाहता है वह यह नहीं जानता कि सुख के प्रधान साधन क्या हैं। सहायता तो स्वयं उनके अंग में ही है। अपनी सहायता और उन्नति स्वयं करने के लिये ही मनुष्य का जन्म हुआ है। दरिद्र से दरिद्र मनुष्य जब अपना प्रबंध आप ही कर लेता है तब क्यों न और लोग भी वैसा ही करें। पर हाँ, उसके लिये वास्तविक शक्ति की आवश्यकता होती है।

इस देश में अधिक आयवाले लोगों की संख्या कम है और दरिद्र अधिक हैं। पर अपव्यय के कारण दोनों श्रेणियों के लोग सदा दरिद्र बने रहते हैं। जिनकी आय अधिक होती है वे सुख के दिनों में तो सारी कमाई नष्ट कर देते हैं और कष्ट के दिनों का ध्यान नहीं रखते। फल यह होता है कि

वे चारों ओर से विपत्ति से घिर जाते हैं। उदाहरण के लिये आप अपने दो-चार पड़ोसियों को ही देख सकते हैं कि वे कितना अधिक व्यय करते हैं, कितना कम बचाते हैं और सदा उनकी क्या दशा रहती है।

आजकल दिन पर दिन सभी चीजें महँगी होती जाती हैं। अनाज, कपड़े, बर्तन तथा गृहस्थी के लिये अन्य सभी आवश्यक पदार्थों का मूल्य बढ़ता जाता है। जमीनों का दाम, मकानों का किराया, नौकरों का वेतन आदि सभी कुछ बढ़ रहा है। इसके अतिरिक्त नित्य नए खर्च निकलते आते हैं। लेकिन इन बातों से क्या आप यह समझते हैं कि हम सुखी और संपन्न हो रहे हैं? कदापि नहीं। हमारी आय जितनी बढ़ती है, व्यय उससे कहीं अधिक होने लगता है। इसलिये हम अधिक आय से कोई लाभ नहीं उठा सकते और ज्यों के त्यों दरिद्र बने रहते हैं। जब सारा समाज अविचारी और दरिद्र हो जाय तो देश किस प्रकार सुखी और संपन्न हो सकता है? इसलिये मनुष्य जब तक विचारवान् और मितव्ययी न हो तब तक दरिद्रता उसका पीछा नहीं छोड़ सकती।

इस देश में खान खोदनेवाले, सड़क कूटनेवाले और मकान बनानेवाले मजदूरों का नियम है कि प्रति आठवें दिन जब चिट्ठा लगता है और उन्हें पिछले सप्ताह की मजदूरी मिलती है तब वे लोग काम पर से छूटते ही पहले कलवरिया में पहुँचते हैं और इतना मद्य पी लेते हैं कि दूसरे दिन अपने

काम पर पहुँचना उन्हें बहुत कठिन हो जाता है। मजदूरी मिलते ही उसका आधा तो बनिये आदि का ऋण चुकाने में निकल जाता है और बाकी आधा जब तक मद्य पीने में न निकल जाय तब तक वे कलवरिया से नहीं निकलते। इस प्रकार प्रायः एक ही दिन में उनकी सप्ताह भर की कमाई निकल जाती है और तब वे फिर काम पर जा पहुँचते हैं। यही दशा यहाँ के मोचियों, धोबियों तथा अन्य छोटी जातियों के लोगों की है। मजदूरी का रुपया हाथ में आते ही वे उसे नष्ट करने के उद्योग में लग जाते हैं और जब तक सारा रुपया हाथ से न निकल जाय, वे कोई काम नहीं करते। इस मूर्खता का जो बुरा परिणाम होता है वह किसी से छिपा नहीं है। यदि इस प्रकार व्यर्थ नष्ट होनेवाले धन का हिसाब लगाया जाय तो शायद उसकी संख्या कई लाख रुपए वार्षिक तक पहुँच जायगी।

यदि मनुष्यजीवन का मुख्य उद्देश्य केवल परिश्रम करके खेती और व्यापार करना और उपार्जित धन को व्यय या संग्रह करना ही होता तो हमारे जातीय वैभव में किसी प्रकार की त्रुटि न रह जाती। लेकिन मनुष्य को अपनी आध्यात्मिक और नैतिक उन्नति करना भी परम आवश्यक है। ऊपर कहे हुए जातीय वैभव में यह उन्नति भी सम्मिलित है। केवल धन की अधिकता से ही कोई जाति संपन्न नहीं हो सकती। उससे मनुष्य के स्वभाव में किसी प्रकार का सुधार नहीं हो सकता।

उलटे दिन-दिन पर अधिक धन व्यय और संग्रह करने के कारण उनकी प्रकृति बिगड़ती जाती है। यही दशा समुदाय की है। यदि सांसारिक और शारीरिक सुखों की वृद्धि के साथ ही साथ हमारे नैतिक चरित्र और सदाचार की वृद्धि न हुई तो धन की अधिकता हमारी पाशविक प्रवृत्तियों के बढ़ाने के अतिरिक्त और कोई सहायता नहीं कर सकती। यदि किसी अशिक्षित और अधिक परिश्रम करनेवाले मनुष्य की आय दूनी कर दी जाय तो उसके खाने-पीने और चैन करने के साधनों को बढ़ाने के सिवा उसका और कोई फल नहीं हो सकता। लेकिन किसी जाति की वास्तविक संपन्नता ऐसी बातों से बहुत दूर रहती है; और जब तक सदाचार की ओर ध्यान न दिया जाय तब तक ऐसी संपन्नता से केवल हानि ही होती है, कोई लाभ नहीं।

मनुष्य-जीवन की शोभा केवल ज्ञान और सद्गुण से है। जिस जाति के लोगों में ये बातें नहीं हैं वह कदापि संपन्न या सुखी नहीं कही जा सकती।

इन सब बातों का यह तात्पर्य्य नहीं है कि आप एक दम कंजूस बन जायँ और बात-बात में कृपणता करने लगें। कृपण की संसार में कोई प्रतिष्ठा नहीं है, सब लोग उससे घृणा करते हैं। हमारा कहना केवल यही है कि मनुष्य को अपने भविष्य के भरण-पोषण का प्रबंध कर लेना चाहिए जिसमें वृद्ध, रुग्ण अथवा विपत्ति की अवस्था में उसे दूसरों का

मुँह न देखना पड़े और उसकी मर्य्यादा या सुख में किसी प्रकार का विघ्न न हो। सावधानतापूर्वक अपने सुख के प्रबंध करने को कोई लोभ या स्वार्थ नहीं कह सकता। वास्तव में इसके विपरीत आचरण करना ही लोभ या स्वार्थ है। मितव्यय का मुख्य तात्पर्य्य यही है कि धन का सद्व्यय किया जाय और उसे पानी की तरह न बहाया जाय; हम लोग उचित उपायों से धन कमाएँ और समझ-बूझकर उसे खर्च करें।

तीसरा प्रकरण

आगम न सोचना

समस्त संसार में भारत सबसे अधिक दरिद्र देश है। न तो इस देश में किसी प्रकार का निज का बड़ा व्यापार होता है और न इसके निवासी ही सुखी या संपन्न हैं। किसी समय यह देश अवश्य बहुत धनी था पर इस समय इसकी दशा बहुत ही शोचनीय है। धन की बात जाने दीजिए, धान्य यहाँ यथेष्ट होता है; पर वह भी हमारी दरिद्रता के कारण हमारे पास बचने नहीं पाता। अपने देश की दरिद्रता का अनुमान आप इसी से कर सकते हैं कि यहाँ के मनुष्यों की वार्षिक आय औसत १८) रु० से अधिक नहीं है और हमारे पाँच करोड़ भाई ऐसे हैं जिन्हें दिन-रात में एक बार भी भर पेट अन्न नहीं मिलता। हमारे कथन की सत्यता की जाँच के लिये आपको बहुत दूर नहीं जाना पड़ेगा। किसी छोटे गाँव या देहात में चले जाइए, आपको मूर्तिमान दरिद्रता के दर्शन हो जायँगे। बेचारे किसान जाड़े, गरमी और बरसात की कुछ भी परवाह न करके कठिन परिश्रम पूर्वक जो अनाज उपजाते हैं उसमें उनका कुछ भी अंश नहीं रहता। जिस देश के निवासियों को भर पेट अन्न भी न मिले

भला उनके कपड़े-लत्ते या और बातों का क्या पूछना है। इन सब कारणों से हम अपने देश को इस योग्य बिलकुल नहीं पाते कि संसार के किसी देश से भी किसी बात में उसकी तुलना करें।

यह तो हुई एक ऐसे देश की बात जो सबसे अधिक दरिद्र और पिछड़ा हुआ है। अब एक ऐसे देश को लीजिए जो सभ्यता, संपन्नता और शक्ति में सबसे बढ़ा-चढ़ा है। वह देश इँगलेंड है। जिस प्रकार दरिद्रता में कोई हमारा मुकाबला नहीं कर सकता उसी प्रकार संपन्नता में अँगरेजों का कोई सामना नहीं कर सकता। वहाँ के बैंक सोने से भरे रहते हैं। बहुत बड़े-बड़े कल-कारखाने दिन और रात चला करते हैं। वहाँ के बनिज-व्यापार का कोई अंत नहीं है। पर वहाँ भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो बहुत अधिक दरिद्र हैं और जिनके लिये वहाँ के विद्वान् और विचारवान् मित-व्यय की बहुत अधिक आवश्यकता समझते हैं। आपको आश्चर्य्य होगा कि इतने संपन्न देश के निवासियों का भी कुछ अंश क्यों दरिद्र है। लेकिन इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। उस देश की स्थिति ही ऐसी है। जहाँ एक ओर इँग-लैंड में संपन्नता और विभव का अखंड राज्य है वहाँ दूसरी ओर बहुत से लोग दरिद्रता और कष्ट के चंगुल में भी फँसे हुए हैं। एक दल दुःख की सीमा तक और दूसरा सुख की सीमा तक पहुँचा हुआ है। दोनों के बीच में बड़ा भारी गड्ढा

है क्योंकि दरिद्रों और निर्धनों के साथ धनवानों की तनिक भी सहानुभूति नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि वहाँ के लोगों की आय हम लोगों की अपेक्षा कई गुना अधिक है पर साथ ही उन लोगों का खर्च भी वैसा ही बढ़ा-चढ़ा है। यही कारण है कि वहाँ के लोग सदा निर्धन बने रहते हैं और उन्हें भी किफायत सिखाने की आवश्यकता होती है। ऐसी दशा में विचार करने की बात है कि जब एक संपन्न देश के निवासी भी अपव्यय के कारण दरिद्र बने रहते हैं तब भारत सरीखे निर्धन देश के निवासियों की अपव्यय के कारण क्या दशा होगी।

असभ्य और जंगली आदमियों को दरिद्रता की चिंता नहीं रहती। जब पेट भरने को कुछ अन्न और शरीर ढकने को कपड़ा या कम से कम छाल भी मिल जाय तो वे किसी प्रकार का कष्ट बोध नहीं करते। जहाँ दासत्व की प्रथा प्रचलित होती है वहाँ के लोग दरिद्रता की बहुत ही कम चिंता करते हैं। वहाँ स्वामी केवल यही चाहता है कि हमारा दास सदा सेवा करने के योग्य बना रहे और इसी लिये वह उसकी बहुत ही परिमित आवश्यकताओं को पूरा करता है। पर जब मनुष्य सभ्य और स्वतंत्र हो जाता है तब उसे दरिद्रता खटकने लगती है और वह औरों की देखा-देखी संपन्न बनने की चेष्टा करने लगता है। विशेषतः इँगलैंड सरीखे देशों में, जहाँ सभ्यता और संपन्नता चरम सीमा तक पहुँची हुई है, लोगों के

अपनी दरिद्रता बहुत अधिक खटकती है। पर भारत में वह बात नहीं है। यहाँ के खेतिहरों या दूसरे दरिद्रों को निर्धनता से अधिक कष्ट नहीं पहुँचता और वह उसके अभ्यस्त बने रहते हैं। हाँ, सभ्य और शिक्षित समाज, जो अन्य देशों के निवासियों को बहुत अधिक सुखी और संपन्न देखता है, अवश्य इस बात की चिंता करता है कि उसके देशभाई भी अधिक सुखी और संपन्न हों।

यद्यपि हमारी दरिद्रता के और भी अनेक कारण हैं, जिनके लिये और-और उपायों की आवश्यकता है पर तो भी हमें यह सिद्धांत न भूलना चाहिए कि जो लोग अपने आपको वश में रख सकते हैं वे बहुत शीघ्र सुखी और संपन्न हो जाते हैं। जिन लोगों को भर पेट अन्न नहीं मिलता वे यदि कुछ भी संग्रह न कर सकें तो वह किसी सीमा तक क्षम्य हो सकता है पर जिन लोगों की आय उनकी आवश्यकता से कुछ भी अधिक है वे यदि विपत्तिकाल के लिये कुछ भी न बचा सकें तो उन्हें पाप का भागी समझना चाहिए।

आसाम की अनेक पहाड़ी जातियाँ बहुत ही असभ्य और दरिद्र होती हैं। उन जातियों के लोग जब जो कुछ मिलता है खा लेते हैं और दूसरे दिन के लिये बचा रखना नहीं जानते। यदि लगातार कई दिनों तक उन्हें कुछ भी खाने को न मिले तो वे अधिक चिंतित नहीं होते। तात्पर्य्य यह कि जंगली लोग किसी प्रकार का मितव्यय नहीं जानते। एक बात और

है। गरम प्रदेशवालों की अपेक्षा ठंढे देश के लोगों को मित-व्यय की अधिक आवश्यकता होती है। जिन देशों में बहुत अधिक जाड़ा पड़ता है वहाँ के लोग गरमी के दिनों में ही जाड़े के लिये भोजन, कपड़े और ईंधन का प्रबंध कर लेते हैं। इसके सिवा वे लोग अच्छे और बड़े मकान भी बना लेते हैं मानों लोगों को परिश्रमी और संपन्न बनाने में जाड़ा अधिक सहायता देता है। लेकिन इससे यह न समझना चाहिए कि गरम देश के निवासी दरिद्र और दुःखी बने रहने के लिये ही उत्पन्न किए गए हैं।

यह केवल प्रकृति-संबंधी एक साधारण नियम है। ईश्वर ने जगत् के सब मनुष्यों को समान अधिकार दिए हैं जिनका पालन नियमपूर्वक होता है। उसमें किसी प्रकार का फेर-फार नहीं होता। यदि एक व्यक्ति सुखी बन सकता है तो दूसरे के लिये दुखी बने रहने का कोई कारण नहीं है। हम स्वयं ही अपने लिये सुख और संपत्ति उत्पन्न करते हैं और अपनी ही करनी से दरिद्र और दुखी बनते हैं। दोनों ही बातों में हम समर्थ हैं। जो लोग सदा सावधानतापूर्वक व्यय करते हैं और भविष्य के भरण-पोषण का यथेष्ट प्रबंध कर लेते हैं वे लोग शायद ही कभी दुखी दिखाई देवें। इसमें संदेह नहीं कि खर्च कम करके कुछ बचाने में कठिनाई अवश्य होती है पर ऐसा करना असंभव नहीं है। प्रकृति के नियमों का यथायोग्य पालन करते रहने से मनुष्य का सदा कल्याण होता

है और दु:ख और विपत्तियों का नाश हो जाता है। लेकिन कठिनता यही है कि उन नियमों को जानने और उनका पालन करनेवाले लोग कम हैं। और जो लोग ऐसे हैं भी उनमें से अधिकांश न तो स्वयं उससे कोई लाभ उठाते हैं और न दूसरों को ही सचेत और सावधान करते हैं।

इस देश के धनवानों की दशा बड़ी ही विलक्षण है। उनमें से बहुतों की अकर्म्मण्यता और विलासप्रियता चरम सीमा तक पहुँची हुई है। उनके व्यसनों के वर्णन के लिये ही एक बड़ा दफतर चाहिए। अंतिम श्रेणी के लोग, जिनमें प्राय: देहातों में रहनेवाले और खेतिहर ही हैं, जिस विपत्ति में अपना दिन बिताते हैं उसका वर्णन करना किसी सहृदय मनुष्य के लिये प्राय: असंभव ही है। जिन लोगों को आठ पहर में एक बार भी भर पेट भोजन न मिले उनकी और उनके बाल-बच्चों की जाड़े, बरसात और गरमी की कठिनाइयों और विपत्तियों का ठीक चित्र खींचने के लिये बड़े साहस और धैर्य की आवश्यकता है। जो लोग बिना अन्न और वस्त्र के पशुओं की भाँति अपना जीवन बिताते हैं उनकी अपेक्षा शहर में रहनेवाले मध्य श्रेणी के लोग कुछ अधिक सुखी समझे जाते हैं। पर यदि विचार-दृष्टि से देखा जाय तो उनकी कठिनाइयाँ भी कम नहीं हैं। आप एक ऐसी गृहस्थी का अनुमान कीजिए जिसका स्वामी २५) मासिक पानेवाला किसी अँगरेजी दफतर का एक साधारण क्लर्क है। उसकी एक बूढ़ी माता, एक

विधवा बहिन, जिसके आगे १२ बरस का एक बालक भी है, उसकी स्त्री और चार-पाँच लड़के-लड़कियाँ हैं। सब मिला-कर उसके घर में दस आदमी हुए। तिस पर वृद्धा माता सदा बीमार रहती है और स्त्री प्रति दूसरे वर्ष एक बालक जनती है। इसके सिवा आए दिन किसी लड़के का मूँडन, किसी का जनेऊ और किसी लड़की का विवाह होता रहता है। खाने, पहनने और मकान का किराया देने के सिवा यह सब खर्च उसी २५) मासिक में ? इसे भी विपत्ति की चरम सीमा ही समझिए। यदि आप ढूँढ़ेंगे तो ऐसे दो-चार परिवार आपके पास-पड़ोस में ही निकल आवेंगे।

अब उन लोगों को लीजिए जिनकी आय इससे कुछ अधिक और परिवार कुछ कम है। ऐसे लोग भी मध्यम श्रेणी में ही गिने जाते हैं। यदि ये लोग चाहें तो धन का सद्-व्यय करके कुछ संग्रह कर सकते हैं और सुखपूर्वक अपना जीवन बिता सकते हैं। पर ऐसा न करके ये लोग अपनी आय के सिवा कुछ ऋण लेकर भी खर्च कर डालते हैं और इस प्रकार देश का कष्ट और दरिद्रता बढ़ाने में बहुत सहायक होते हैं। यह खर्च प्रायः अनावश्यक होता है और केवल ऊपरी तड़क-भड़क दिखाने के लिये किया जाता है। अधिक मूल्य के कपड़े पहनने, नशे की आदत लगाने, घुड़दौड़, रूई और अफीम आदि के जूए में रुपए लगाने और सर्कस, थिएटर और नाच-तमाशे आदि देखने में ही उनकी आय का बहुत बड़ा

अंश निकल जाता है। वे लोग परिश्रम अवश्य अधिक करते हैं पर अविचारी और अदूरदर्शी होने के कारण अपनी आय का सद्व्यय नहीं कर सकते। यदि वे लोग जैसे परिश्रमी होते हैं वैसे ही विचारवान् भी बन जायँ तो वे बहुत अधिक सुखी और स्वतंत्र हो सकते हैं और दूसरों का भी अच्छा उपकार कर सकते हैं।

इन बातों से यह सिद्ध हुआ कि परिश्रमी आदमी भी यदि अच्छी बातों का अभ्यास न डाले तो उसका जीवन केवल पाशविक रह जाता है। उसकी बढ़ी हुई आमदनी भी उसे अधिक सुख देने के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं पहुँचा सकती। दुष्काल आदि अवसरों पर ऐसे आदमियों को भी बाल-बच्चों-सहित भूखों मरना पड़ता है जो यदि सुकाल के समय चाहते तो साल छः महीने खर्च करने के योग्य धन बचा सकते थे। लेकिन प्रायः लोग सुकाल में तो चैन उड़ाते हैं और विपत्ति के समय कष्ट झेलते हैं। ऐसे लोगों को यदि दस-बीस दिन तक बेकाम रहना पड़े और उन्हें किसी प्रकार की आय न हो तो वे बहुत कष्ट उठावेंगे और उन्हें केवल दूसरों की सहायता पर अवलंबित रहना पड़ेगा। इन सबका मुख्य कारण उनका आगम न सोचना है।

इस प्रकार अदूरदर्शिता के कारण दुःख उठानेवाले लोग केवल अपनी ही हानि नहीं करते बल्कि अपने देश और समाज की स्थिति भी बहुत कुछ बिगाड़ देते हैं। गरीब होना

बुरी बात नहीं है पर कंगाल बनना ही हानिकारक है। जो लोग केवल वर्त्तमान का ध्यान रखते हैं वे अपना भविष्य नष्ट करते हैं। जो लोग सदा यही कहते हैं "खाओ-पीओ और चैन करो" उनकी दशा कभी सुधर नहीं सकती। ऐसे लोगों को मितव्यय की शिक्षा देने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। सब लोग मितव्यय करना सीख जायँगे तो वे सुखी होने के साथ ही साथ सद्गुणी भी हो जायँगे। इस प्रकार से देश की दशा दो-तीन पीढ़ियों में ही बहुत कुछ सुधर सकती है। सभ्यता के इतिहास में एक पीढ़ी मानों एक दिन है। कोई बड़ा काम दो, चार या दस दिन में ही पूरा नहीं हो सकता; उसके लिये कुछ अधिक समय की आवश्यकता होती है। इसलिये हमें चाहिए कि हम लोग अभी से भविष्य के सुधार का विचार करके मितव्ययी बन जायँ और अपनी संतान के सुखी होने का मार्ग सुगम कर दें।

चौथा प्रकरण

संचय के उपाय

इसमें कोई संदेह नहीं कि इधर लोगों की आय दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है। सभी श्रेणी के लोग अपने पूर्वजों की अपेक्षा कुछ न कुछ अधिक परिमाण में धन कमाते हैं। जिन मजदूरों को आज से दस या बीस बरस पहले ५) मासिक मिलता था उन्हें आजकल ८) या १०) मिला करता है। पर इस वृद्धि से उनका कोई लाभ नहीं होता। इसका कारण यह है कि वेतन-वृद्धि के साथ ही साथ उनके जीवन-निर्वाह की आवश्यक चीजों का मूल्य भी उसी प्रकार बढ़ता जाता है। पहले यदि एक व्यक्ति के साधारण भोजन के लिये ४) मासिक आवश्यक होता था तो आज उसी में ६) या ७) और शायद इससे भी कुछ अधिक लगता है। पहले यदि किसी साधारण गृहस्थ के लड़के का विवाह ५०) में हो जाता था तो आज २००) में भी उसका पूरा पड़ना कठिन होता है।

प्रायः ऐसा भी होता है कि अंतिम श्रेणी के लोगों की आय मध्यम श्रेणी के लोगों की आय से बढ़ जाती है। यदि मध्यम श्रेणी के एक आदमी को १५) या २०) मासिक की आय होती हो तो कोई राज, दरजी, या दफ्तरी—जो हाथ का

अच्छा कारीगर हो—२५) या ३०) कमा सकता है। ऐसे लोग चाहें तो अपनी कमाई का अच्छा अंश बचा सकते हैं; पर शराब पीने या इसी प्रकार के और दुर्व्यसनों के कारण उनका हाथ सदा खाली रहता है। अनेक ऐसे लोग देखे गए हैं कि यदि वे सदाचारी और परिश्रमी बने रहें तो अच्छे धनी बन सकते हैं पर दुर्व्यसनों में फँसे रहने के कारण न तो स्वयं उन्हें पहनने को वस्त्र मिलता है और न उनके बाल-बच्चों को भर पेट अन्न।

लेखक एक ऐसे व्यक्ति को जानता है जो युक्त प्रांत का निवासी था और दिल्ली के किसी सरकारी दफ़्तर में ३५) मासिक पाता था। उसके तीन लड़के थे जो सबके सब सदाचारी और परिश्रमी थे। बड़े लड़के ने बहुत थोड़ी पूँजी से एक छोटी दूकान खोली, मँझला लड़का एक महाजन के यहाँ २५) की नौकरी करने लगा और कुछ दिनों बाद छोटा लड़का भी एंट्रेंस पास करके ३०) मासिक पर एक स्कूल में शिक्षक हो गया। आठ ही दस वर्ष में ये लोग बीस-पचीस हजार रुपए के आदमी हो गए और उनके हाथ कई मकान भी आ गए। एक और आदमी का जिक्र है जो अच्छा पढ़ा-लिखा था और एक दुर्घटना के कारण अपनी रेलवे की नौकरी से अलग कर दिया गया था। दस वर्ष पूर्व वह काशी में आया; उस समय वह यहाँ बाजारों में घूमकर सूइयाँ, सलाइयाँ और सिगरेट बेचा करता था। लेकिन आदमी ईमानदार और

परिश्रमी था इससे शीघ्र ही उसने अच्छी उन्नति कर ली और आज वह कई दूकानों और कार्य्यालयों का मालिक है।

ऐसे लोगों के उदाहरण देने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती जिन्होंने हजारों, लाखों रुपए की पूँजी शराब, जूए या इसी प्रकार के और दुर्व्यसनों में गँवा दी हो। ऐसे लोगों और उनके परिवार की जो शोचनीय दशा होती है वह किसी से छिपी नहीं है। जिन लोगों को कोई पैतृक संपत्ति नहीं मिलती और केवल अपने बाहु-बल का ही सहारा होता है उनकी अवस्था और भी शोकजनक होती है। बंगाल के मानभूम आदि जिलों में, जहाँ कोयले की खानें हैं और लाखों कोल और भील मजदूरी करते हैं, यदि आप जाकर देखें तो मालूम होगा कि जिस दिन उन लोगों को साप्ताहिक वेतन मिलता है उस दिन वे लोग सारी रात अपनी स्त्रियों और बच्चों-सहित कलवरिया के आसपास चारों ओर पड़े रहते हैं। उस दिन वे लोग इतनी अधिक मदिरा पी लेते हैं कि दूसरे दिन बिलकुल काम नहीं कर सकते और ठीकेदारों को प्रायः खानें बंद ही रखनी पड़ती हैं। इसके परिणाम-स्वरूप केवल कार्य्य की ही हानि नहीं होती बल्कि परस्पर बहुत कुछ मार-पीट और लड़ाइयाँ भी होती हैं; उसी दिन पुराने वैर निकाले जाते हैं और बीसियों के हाथ-पैर और सिर टूटते हैं। जिन दिनों कार्य की अधिकता होती है और वेतन बहुत बढ़ जाता है तो यह रोग और भी संक्रामक और भीषण रूप धारण करता है। अर्थात्

अधिक आय से लाभ के बदले अनेक हानियाँ होती हैं और परिणाम बुरा निकलता है।

अधिक आय से लोगों का कोई उपकार नहीं होता; हाँ उनका चरित्र अवश्य बिगड़ जाता है। इससे निर्दयता, दुर्गुण और पाप की वृद्धि होती है। जो व्यक्ति अनेक छोटे-छोटे असहाय बालकों को उत्पन्न करता है वह यदि अपनी सारी आय अपने ऊपर ही खर्च कर डाले तो उससे बढ़कर और कोई स्वार्थांध और निर्दय नहीं हो सकता। वह अपने बाल-बच्चों और आस-पास के लोगों के लिये बहुत बुरा उदाहरण खड़ा करके संसार में पाप और कष्ट की वृद्धि करता है। जब वह बीमार होता है तब उसके बाल-बच्चे भूखों मरने लगते हैं और उसके मर जाने पर वे दूसरों के सिर का भार बनते हैं और जगत् को अधिक दुःखमय बनाने में सहायक होते हैं।

जो लोग बिलकुल अपढ़ हैं और जिन्हें स्वयं अपना हानि-लाभ नहीं सूझता उन्हें उनके अधिकार आदि की बात समझाना और गूढ़ उपदेश देना बिलकुल व्यर्थ होता है। इसलिये जो लोग समझदार और पढ़े-लिखे हैं उन्हें उचित है कि वे समय-समय पर ऐसे अपढ़ और अज्ञान लोगों को छोटे-मोटे उदाहरणों द्वारा किफायती होने, दुर्व्यसनों से दूर रहने और स्वार्थत्याग करने की शिक्षा दिया करें। ऐसे उपदेशों के अनुसार कार्य्य करने से वे लोग अधिक योग्य, सुखी और प्रतिष्ठित हो जायँगे।

जो आदमी हाथ का अच्छा कारीगर होता है वह यदि परिश्रम और मितव्यय करे तो बड़े ही सुख और स्वतंत्रता से अपना जीवन बिता सकता है। यदि वह २५) या ३०) मासिक कमा ले तो अच्छी तरह खा-पहन और अपने लड़कों को पढ़ा-लिखा सकता है। उसे रुपए-पैसे की कभी कमी नहीं हो सकती। लेकिन प्रायः लोग ऐसा नहीं करते और अनावश्यक और अधिक सुख के लिये बहुत सा धन व्यर्थ नष्ट कर देते हैं। इन बातों में वे जंगलियों से किसी प्रकार कम नहीं होते। जंगलियों का नियम है कि जब तक उनका सब सामान समाप्त नहीं हो जाता तब तक खूब खाते-पीते हैं; और जब उनके पास कुछ भी शेष नहीं रह जाता तब वे शिकार या युद्ध के लिये निकलते हैं।

स्माइल साहब अपव्यय करने या कुछ न बचा रखने की नीति का संबंध दासत्व-प्रथा से बतलाते हैं। वे कहते हैं कि बहुत प्राचीन-काल में शूर-वीर लोग निर्बल मनुष्यों से अपना काम लिया करते थे। विजयी जातियों ने इस प्रकार विजित जाति के लोगों को अपना दास बनाना आरंभ किया था। इँगलैंड में दासों का क्रय-विक्रय एक प्रकार से अठारहवीं शताब्दी तक प्रचलित था। दासों को अपने लिये किसी प्रकार का धन बचाने या संग्रह करने का कोई अधिकार नहीं था। उन्हें अपने भविष्य का प्रबंध करने की कोई आवश्यकता न होती थी; उसका प्रबंध उनके स्वामी ही करते थे।

स्माइल साहब की सम्मति में लोगों ने अपने भविष्य का प्रबंध न करने की आदत इसी दास-प्रथा से सीखी है। लेकिन यह बात ठीक नहीं मालूम होती। बहुत प्राचीन-काल में संभव है कि भारतवर्ष में थोड़ा-बहुत दास-प्रथा रही हो पर इधर हजारों वर्ष से भारतवासी उसका नाम भी नहीं जानते। लेकिन यहाँ भी अपव्ययी उतने ही परिमाण में हैं जितने और देशों में। अपव्यय का कारण मूर्खता और अविचार के सिवा कुछ नहीं हो सकता। जिन लोगों में दूरदर्शिता नहीं होती वे ही अपव्ययी होते हैं, और लोग नहीं।

हाँ, मनुष्य अपनी प्रवृत्ति और वासनाओं का दास अवश्य है। जो लोग अपनी वासनाओं को नहीं दबा सकते वे कभी मितव्ययी नहीं हो सकते। जो लोग इस दासत्व से मुक्त होना चाहें उन्हें स्वतंत्रता और दृढ़तापूर्वक अपनी वासनाओं का दमन करना चाहिए। भविष्य के वास्तविक सुख के लिये उन्हें अपनी इंद्रियों को वश में करना और क्षणिक मिथ्या सुख का त्याग करना चाहिए। अपनी स्थिति सुधारने का इससे अच्छा और कोई उपाय नहीं है।

संसार में ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती जाती है त्यों-त्यों मनुष्य का मूल्य और महत्त्व भी बढ़ता है। हम लोगों में से ही अच्छे-अच्छे दार्शनिक, विद्वान्, कवि, राजनीतिज्ञ और सुधारक निकलते हैं और इस प्रकार जगत् उन्नत होता जाता है। [असंतोष मनुष्य को उच्च बनाता है। जब वह अपनी

वर्त्तमान दशा से असंतुष्ट हो जाता है तब उन्नत होने की चेष्टा करता है। उन्नति में संतोष से बहुत बाधा पड़ती है और असंतोष से बड़ी सहायता मिलती है।

छोटी श्रेणी के लोग यही समझते हैं कि ईश्वर ने उन्हें केवल इसी लिये उत्पन्न किया है कि वे परिश्रम करके ही अपना तुच्छ जीवन व्यतीत करें। वे समझते हैं कि परिश्रम करना बहुत घृणित है और इस घृणित दशा से निकलने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। इसलिये वे उन्नत होने की कभी कोई चेष्टा नहीं करते और जो कुछ उनके हाथ में आता है, सब खर्च कर देते हैं। लेकिन वे लोग यह बात नहीं जानते कि परिश्रम करना ही प्रतिष्ठा का अच्छा साधन है; और जो लोग परिश्रम नहीं करते वे ही घृणा की दृष्टि से देखे जाने के योग्य हैं। यदि साधारण परिश्रम करनेवालों के विचार किसी प्रकार सुधारे और उन्नत किए जा सकें तो इससे बढ़-कर और कोई अच्छी बात नहीं हो सकती। इस काम में शिक्षितों और विचारवानों की सहायता की बहुत बड़ी आवश्यकता है।

जिन कारीगरों की आय कुछ अधिक है वे यदि चाहें तो अवकाश के समय अपने कल्याण के अनेक अच्छे उपाय सोच सकते हैं और अपने समाज में प्रतिष्ठित बन सकते हैं। वास्तव में मनुष्य का महत्त्व धनवान् होने में नहीं है बल्कि विचारवान् और सदाचारी होने में है। अशिक्षा के कारण

लोग अपनी दशा आप ही बिगाड़ लेते हैं; नहीं तो उनके उन्नत होने में और कोई बाधा नहीं है। जिनकी आय बहुत कम है वे भी यदि चाहें तो अपनी संतान को शिक्षा देकर उन्नत बना सकते हैं। पर ऐसा न करके वे लोग शराब और जूए आदि दुर्व्यसनों में अपनी पूँजी गँवा देते हैं और सदा दरिद्र और दुखी बने रहते हैं। इस काम में जितने दोषी वे लोग हैं उतने ही हम लोग भी हैं जो शिक्षित होकर भी उनमें ऐसे विचारों का प्रचार नहीं करते।

इन दोषों को दूर करने के लिये लोग अनेक प्रकार के उपाय बतलाते हैं। कोई कहता है, शिक्षा का प्रचार किया जाय, किसी की सम्मति में नैतिक और धार्म्मिक शिक्षा दी जाय और कुछ लोग उसके लिये स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता समझते हैं। इन सब उपायों से सुधार में कुछ न कुछ सहायता अवश्य मिल सकती है। बात यह है कि लोगों में इस समय अज्ञता बहुत अधिक फैली हुई है और जब तक वह दूर न की जाय तब तक सुधार या उन्नति की कोई आशा नहीं है। इस समय अज्ञान की ही प्रबलता है। इसलिये लोगों में ज्ञान, शिक्षा और सुविचारों का प्रचार करना चाहिए। इस समय लोगों की प्रवृत्तियाँ अधिकतर असत् की ओर ही हैं। अनुचित बातों का प्रभाव उन पर बहुत शीघ्र और अधिक पड़ता है। जो लोग कुछ भी नहीं जानते या जिनकी प्रवृत्तियाँ पहले से ही बिगड़ी हुई हैं उनके हृदय पर

अनुचित बातें शीघ्र अपना अधिकार जमा लेती हैं। सुयोग्य और बुद्धिमान् लोगों के विचार उन लोगों तक नहीं पहुँचते और वे उनके लाभों से वंचित रहते हैं।

अज्ञता का नाश करने के लिये ज्ञान के प्रचार की आवश्यकता है। ज्यों-ज्यों आकाश में सूर्य्य चढ़ता जाता है त्यों-त्यों अंधकार नष्ट होता जाता है और उल्लू या चमगीदड़ छिप जाते हैं। उसी प्रकार ज्यों-ज्यों लोगों में शिक्षा का प्रचार होता जायगा त्यों-त्यों मदिरा, अपराध, दरिद्रता और अन्य दोषों का नाश होता जायगा। इस बात को सब लोग स्वीकार करते हैं कि आजकल शिक्षा का बहुत अभाव है। जो लोग साधारण शिक्षित होते हैं उनसे और भी अधिक अनिष्ट होता है। यदि कोई बुद्धिमान् या पढ़ा-लिखा आदमी किसी दुर्व्यसन में लग जाय तो वह अपनी सारी बुद्धिमत्ता या विद्वत्ता उसके समर्थन में लगा देता है। इसका कारण यह है कि वर्त्तमान शिक्षा में नैतिक या धार्मिक भाव बिलकुल नहीं होता। केवल बुद्धि के विकास से नैतिक चरित्र नहीं सुधर सकता, आपको अच्छे-अच्छे पढ़े-लिखे लोग ऐसे मिलेंगे जिनमें अनेक दुर्गुण और दुर्व्यसन भरे होंगे। इन बातों से यह सिद्ध होता है कि साधारण शिक्षा का आधार धर्म्म और नीति पर होना चाहिए।

इसमें संदेह नहीं कि शिक्षा के प्रचार के साथ ही साथ लोगों में दूरदर्शिता आवेगी, उन्हें अपने कर्त्तव्य का ज्ञान

होगा और वे अधिक सावधानता से कार्य्य करेंगे। एक जर्मन विद्वान् कहता है कि शिक्षा एक पूँजी है जो माता-पिता-द्वारा बालकों को उपयोग करने के लिये दी जाती है। बड़े होने पर बालक धन की भाँति विद्या का भी दुरुपयोग कर सकते हैं। ज्ञान प्राप्त करने का फल यही है कि लोग विद्या और धन दोनों का सद्व्यय करना सीखें। विद्या चाहे जैसी हो, उससे कुछ लाभ अवश्य होता है। उसका चाहे और कुछ फल हो या न हो पर मनुष्य कुछ उन्नत और अग्रसर अवश्य हो जाता है। इसलिये विद्या अवश्य प्राप्त करनी चाहिए।

हमारे देश में अभी सार्वजनिक शिक्षा की बहुत बड़ी आवश्यकता है। यद्यपि इधर शिक्षा-प्रचार का कार्य्य कुछ आरंभ होने लगा है पर अपने देश के विस्तार का ध्यान रखते हुए वह बहुत ही कम मालूम होता है। जहाँ तक अवसर मिला है, भारतवासियों ने यह बात भली भाँति प्रमाणित कर दी है कि वे विद्या और बुद्धि में और देशवालों का भली भाँति सामना कर सकते हैं। यदि हम लोगों की उचित शिक्षा का प्रबंध कर दिया जाय तो हमारी दशा शीघ्र ही सुधर सकती है।

एक अच्छे विद्वान् का कथन है कि मनुष्य जितना अधिक धन कमा सके कमाए और जहाँ तक हो सके कम खर्च करे। ऐसा करने से उसे और उसके परिवार के लोगों को वास्तविक सुख मिल सकता है। बचत करना ही मानों उन्नति और

स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होना है। व्यय सदा आय से कम होना चाहिए और जो कुछ बचे वह आवश्यक समय के लिये रख छोड़ना चाहिए। इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्त करने में हमें कोई बात उठा न रखनी चाहिए क्योंकि मनुष्य का वास्तविक सुख उसी में है।

पाँचवाँ प्रकरण

मितव्यय किस प्रकार करना चाहिए

किफायत करने का ढंग बहुत सहज है। उसका पहला नियम यह है कि जितना तुम कमाते हो उससे कम खर्च करो और उसमें से कुछ न कुछ भविष्य के लिये बचाओ। जो मनुष्य अपनी आय से अधिक खर्च करता है वह मूर्ख और पागल है। दूसरा नियम यह है कि सब चीज का मूल्य उसी समय चुका दो और कभी उधार या ऋण न लो। जो व्यक्ति उधार लेता है वह धोखा खाता है और अंत में स्वयं उसकी नीयत भी बदल जाती है। तीसरा नियम यह है कि यदि भविष्य में तुम्हें किसी लाभ की संभावना हो तो उसके भरोसे अभी खर्च न बढ़ा दो। ऐसे संभावित लाभ कभी नहीं होते, और उन्हीं की आशा पर मनुष्य ऋण से बहुत दब जाते हैं और कभी उससे मुक्त नहीं हो सकते। एक और नियम यह भी है कि सदा अपने आय-व्यय का पूरा हिसाब रखो और उन्हें लिखते रहो। नियमपूर्वक रहनेवाला मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को पहले से ही जान लेता है और उनका उचित उपाय कर लेता है। ऐसा करने से उसका सब हिसाब ठीक बैठ जाता है और आय से व्यय कभी अधिक नहीं होता।

इन सब बातों के अतिरिक्त गृहस्वामी या गृहस्वामिनी को इस बात का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए कि कोई चीज व्यर्थ नष्ट न हो। सब चीजों का ठीक उपयोग हो, वे नियत स्थान पर रक्खी जायँ, सब कार्य्य स्वच्छता और नियमपूर्वक किये जायँ। बड़े से बड़े आदमियों की, अपने घर के कामों की देख-रेख करने में कोई अप्रतिष्ठा नहीं है। और साधारण या मध्यम श्रेणी के लोगों के लिये तो अपनी गृहस्थी का सब प्रबंध ठीक रखना बहुत ही आवश्यक है।

यह निश्चय करना बहुत कठिन है कि मनुष्य को अपनी आय का कितना अंश खर्च करना और कितना बचाना चाहिए। एक विद्वान् की सम्मति में मनुष्य को अपनी आय का आधा धन व्यय करना और आधा बचाना चाहिए। संभव है कि बहुत अधिक मितव्यय करनेवाले लोग ऐसा कर सकते हों पर प्रायः शहरों में रहनेवालों और ऐसे लोगों के लिये जिनका परिवार बड़ा हो, यह बात बहुत ही कठिन बल्कि असंभव होगी। इसलिये सबसे अच्छा नियम यह है कि जहाँ तक अधिक हो सके मनुष्य किफायत करे। इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि जिसका परिवार जितना ही बड़ा है वह उतना ही कम खर्च करे और अधिक बचाए।

धनवान् और निर्धन सबके लिये मितव्यय की बहुत बड़ी आवश्यकता है। बिना मितव्यय के मनुष्य परोपकारी नहीं बन सकता। जो अपनी सारी आय खर्च कर देता है

वह न तो दूसरों की सहायता कर सकता है और न किसी को दान दे सकता है। ऐसा आदमी न तो अपने बच्चों की शिक्षा का पूरा प्रबंध कर सकता है और न उन्हें जीवन-यात्रा के लिये अधिक योग्य बना सकता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र सरीखे विद्वान् और बुद्धिमान् को भी अपव्यय के कारण कष्ट उठाना पड़ा था। लेकिन नित्य सैकड़ों-हजारों आदमी ऐसे देखे जाते हैं जिनमें विद्या और बुद्धि का बहुत अभाव है, पर वे भी मितव्यय के कारण बड़े सुख से रहते हैं।

यद्यपि भारतवासी बुद्धिमान् और परिश्रमी होते हैं पर तो भी अनेक दुर्निवार्य्य कारणों से उनकी उन्नति में बहुत बाधा पड़ती है। उन्हें किसी विषय की पूरी शिक्षा नहीं दी जाती जिसके कारण वे अज्ञानी बने रहने के सिवा लापरवाह हो जाते हैं और आगम नहीं सोचते। साधारणतः हम लोग अपनी गृहस्थी का भरण-पोषण करके अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं, भविष्य का कोई विचार नहीं करते और परिश्रमी होने पर भी दरिद्र बने रहते हैं। यों तो हमारा देश ही दरिद्र है, पर अपने अविचारी और अपव्ययी होने के कारण हम अपनी दरिद्रता और भी बढ़ा लेते हैं।

आजकल कुछ ऐसी प्रथा सी चल गई है कि लोग सदा अपनी आय से अधिक व्यय करते हैं। बड़े आदमियों को अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिये मकान, बाग, गाड़ी-घोड़ा, नौकर-चाकर और मुसाहब आदि रखने, अच्छा खाने, बढ़िया

पहनने, नाच, तमाशे और थिएटर देखने, और बड़े-बड़े हाकिमों को दावतें और उनके संकोच से बड़े-बड़े चंदे देने की आवश्यकता होती है। बहुतों को तो ऐसे कार्य्यों के लिये प्राय: ऋण लेना पड़ता है और इस प्रकार निर्धनता की वृद्धि होने लगती है।

बड़े आदमियों से यह दुर्गुण चलकर मध्यम श्रेणी के लोगों तक पहुँचता है। उन्हें भी उत्तम भोजन, बढ़िया वस्त्र के अतिरिक्त शराब, भाँग, तंबाकू, नाच-गाने और सैर-तमाशों की आवश्यकता होती है। थोड़ी आमदनी बढ़ते ही ऊपरी तड़क-भड़क के लिये बहुत अधिक व्यय बढ़ जाता है। बढ़ते-बढ़ते इस दुर्गुण की लहर अंतिम श्रेणी के लोगों तक जा पहुँचती है जिनकी आय का आधे से अधिक भाग कलाल की दूकान में जाता है। इस प्रकार सभी श्रेणियों के लोग अपनी आय से अधिक धन व्यय करते हैं जिसका परिणाम दरिद्रता और कष्ट के सिवा और कुछ नहीं होता।

मितव्यय और कंजूसी में बड़ा भेद है। कंजूस सदा केवल धन-संग्रह करने की चिंता में लगा रहता है लेकिन मितव्ययी अपने सुख का ध्यान रखकर आवश्यक व्यय करता है और उससे जो कुछ बच रहता है वह आपत्ति-काल के लिये बचा रखता है। कंजूस केवल धन को ही अपना सर्वस्व समझता है और उसे कभी अलग नहीं करना चाहता लेकिन मितव्ययी उसके द्वारा अपने और अपने आश्रितों के

सुखी और निश्चिंत रहने का प्रबंध करता है। कंजूस कभी संतुष्ट नहीं होता; वह अपनी आवश्यकता से कहीं अधिक धन संग्रह कर लेता है और मरने के बाद ऐसे लोगों के लिये छोड़ जाता है जो अपव्यय के अतिरिक्त उसका और कोई उपयोग नहीं करते। लेकिन मितव्ययी की दशा इससे बिलकुल भिन्न होती है। उसका उद्देश्य केवल उचित सुख प्राप्त करना होता है।

कुछ न कुछ बचत करना, छोटे-बड़े सबका कर्त्तव्य है। यदि मनुष्य विवाहित हो तो उसका यह कर्त्तव्य और भी बढ़ जाता है। स्त्री और बच्चों के लिये इस कर्त्तव्य के पालन की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है जिसमें उसके मरने के बाद परिवार के लोगों को दूसरों का आश्रित न होना पड़े। संभव है कि किफायत करके धन-संग्रह करने में किसी को बहुत अधिक सफलता न हो पर तो भी उससे अनेक लाभ होते हैं। उससे मनुष्य का चित्त स्थिर होता है, विचार शुद्ध और पवित्र होते हैं, मनोवृत्तियाँ वश में रहती हैं, किसी प्रकार की चिंता कभी निकट नहीं आती और सदा सुख मिलता है। यदि थोड़ा सा धन भी संग्रह कर लिया जाय तो उससे अनेक प्रकार की विपत्तियाँ दूर हो सकती हैं, अनेक बार आँसू पोंछे जा सकते हैं। जिसके पास कुछ भी धन होता है उसका चित्त प्रफुल्लित और हलका रहता है। उसपर अचानक कभी दरिद्रता नहीं आ सकती; और यदि कभी आवे भी तो वह

कुछ समय तक उसे रोक सकता और उसका प्रबंध कर सकता है; मितव्यय ही मनुष्य की शोभा है, उससे हमारी युवावस्था सुख-पूर्ण और वृद्धावस्था प्रतिष्ठा-पूर्ण रहती है। उसके द्वारा हमारे प्राण भी सुख से निकलते हैं, क्योंकि हम किसी पर कोई बोझ नहीं छोड़ जाते। उससे हमारी संतान को भी अच्छी शिक्षा मिलती है और वह हमारा अनुकरण करके सुख और स्वतंत्रतापूर्वक जीवन-यात्रा आरंभ करती है।

प्रत्येक मनुष्य का यह प्रधान कर्त्तव्य है कि वह शिक्षित और उन्नत बने और जहाँ तक उचित उपायों से हो सके, और लोगों को भी उन्नत बनने में सहायता दे। प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्रतापूर्वक विचार और कार्य्य कर सकता है। आपको ऐसे बहुत से लोग दिखलाई देंगे जिन्होंने अनेक प्रकार की कठिनाइयों और विपत्तियों का सामना करके सुखी, संपन्न और प्रतिष्ठित बनने में अच्छी सफलता प्राप्त की है। ऐसे लोग घोर दरिद्रता में जन्म लेकर भी अपनी स्थिति भली भाँति सुधार लेते हैं। मनुष्य की बड़ाई, समाज की शोभा और जाति की शक्ति कठिनाइयों का सामना करके उन्हें दूर करने में ही है।

अग्रसर और उन्नत होने का दृढ़ निश्चय कर लेना ही मानों उन्नति-पथ पर एक कदम आगे बढ़ना है। यही पहला कदम बढ़ाना आधा संग्राम है। जो मनुष्य स्वयं उन्नति करता है उसमें दूसरों को उन्नत बनाने की शक्ति भी आ जाती

है। वह स्वयं आदर्श बनकर औरों को बहुत अच्छी शिक्षा देता है और इस शिक्षा का फल मौखिक शिक्षा की अपेक्षा कहीं अधिक होता है। अब आप ही अनुमान करें कि यदि समाज के आधे आदमी भी ऐसा करने लग जायँ तो सारा समाज कितना अधिक सुखी और संपन्न हो सकता है।

संसार में बहुत से लोग संपन्न और बहुत से दरिद्र दिखलाई देते हैं। इस अंतर का कारण परिश्रमी और अकर्मण्य होना है। जो मनुष्य बुद्धिमान्, योग्य और परिश्रमी होता है वही सुखी और संपन्न रह सकता है। लेकिन जो मनुष्य दूसरों से सहायता की आशा रखता है उसे कभी सफलता नहीं होती। उसकी कार्य्य-प्रणाली ही दूषित होती है और किसी प्रकार के अनुभव से उसे कोई लाभ नहीं होता। भाग्य पर लोग जितना अधिक विश्वास रखते हैं, वह वास्तव में उतने विश्वास के योग्य नहीं है। असल में अपने कार्य्यों का सुप्रबंध ही सौभाग्य है। जो मनुष्य सदा कठिनाइयाँ ही झेलता है और ठोकर खाकर भी नहीं सँभलता वही वास्तव में अभागा है।

बहुत से लोग ऐसे होते हैं जिनमें विद्वत्ता या योग्यता तो बहुत होती है, पर वे कोई कार्य्य करने की शक्ति नहीं रखते। वे न तो स्वयं सांसारिक साधनों के अनुकूल चलते हैं और न उन साधनों को ही अपने अनुकूल बनाते हैं। उनके विचार और उपक्रम इतने अधिक बढ़े हुए होते हैं कि

वे कार्यरूप में परिणत नहीं किए जा सकते। उनकी उपमा उसी व्यक्ति से दी जा सकती है जो छोटी सी गढ़ैया पार करने के लिये मील भर पीछे हटकर दौड़ना आरंभ करता है और गढ़ैया के पार पहुँचकर थक जाने के कारण साँस लेने के लिये बैठ जाता है। वास्तव में हम लोगों को कार्य करने की आवश्यकता होती है; केवल उसकी तैयारियों की नहीं। मनुष्य वही उपयुक्त है जो अपने उद्देश्य और कार्य निश्चित करके उन्हें पूरा करने के लिये सबसे सीधे और पास के रास्ते पर लग जाता है। जो व्यक्ति केवल लच्छेदार बातों में अपने विचारों का रूपक खड़ा कर देता है उसकी कहीं कदर नहीं होती। बिना काम के कोरी बातों का कोई मूल्य नहीं।

संसार में उन्नति और धन-संग्रह करने की आकांक्षा निरुपयोगी और व्यर्थ नहीं है। निस्संदेह, मनुष्य के हृदय में उसका बीजारोपण भलाई के लिये ही हुआ है। वास्तव में समाज को शक्तिशाली और जीवित बनाए रखने का वह बहुत अच्छा साधन है। व्यक्तिगत परिश्रम का यही आधार है। शिल्प, साहित्य, व्यापार, स्वतन्त्रता आदि सबका मूल यही है। परिश्रम करके नए-नए आविष्कार करने और एक दूसरे से बढ़ जाने की शक्ति इसी से उत्पन्न होती है।

आलसी या अपव्ययी कभी बड़ा आदमी नहीं बन सकता। संसार में साहित्य, विज्ञान और आविष्कार आदि की इतनी धूम उन्हीं लोगों के कारण है जो अपना एक क्षण भी व्यर्थ

नहीं गँवाते। बिना किसी न किसी प्रकार के परिश्रम के मनुष्य की स्थिति ही नहीं रह सकती। संसार के सब काम केवल धन पर निर्भर हैं और धन के आने का मार्ग परिश्रम है। इसलिए जिसे संसार में रहना है उसे परिश्रम और धन-संग्रह करना आवश्यक है।

यदि किसी काम को एक व्यक्ति की अपेक्षा एक समुदाय मिलकर करे तो वह बड़ी सरलता और उत्तमतापूर्वक हो सकता है। समुदाय में बड़ी शक्ति है। किसी बड़े उद्देश्य के साधन के लिये बहुत से लोगों को मिल जाना चाहिए, इस प्रकार मिलकर कार्य करने को सहकारिता कहते हैं। यूरोप, अमेरिका आदि सभ्य और शिक्षित देशों में व्यापार, नहर, रेल, बंक, खान, कल, कारखाने आदि सभी बड़े-बड़े काम इसी से होते हैं। पहले बहुत से लोग मिलकर अपना-अपना धन एक स्थान पर संग्रह करते हैं और जब इस प्रकार बहुत अधिक पूँजी हो जाती है तब वे लोग उससे बड़े कार-बार आरंभ करते हैं। भारत में भी अब धीरे-धीरे इस प्रकार काम करने की प्रथा चल पड़ी है और अनेक को-आपरेटिव सोसाइटियाँ और बंक खुल गए हैं।

अंतिम श्रेणी के लोगों के पास परिश्रम के सिवा और पूँजी बहुत ही कम होती है। इसलिये वे लोग न तो कोई बड़ा काम कर सकते हैं और न अच्छा लाभ उठा सकते हैं। लेकिन जब सबकी सहायता, पूँजी और परिश्रम से कोई कार्य

आरंभ किया जाता है तब उसमें बहुत अच्छी सफलता होती है। इसलिये यह प्रथा मध्यम और अंतिम श्रेणी के लोगों के लिये बहुत ही आवश्यक और लाभदायक है।

समस्त संसार में परस्पर मिलकर काम करने की प्रथा बहुत दिनों से चली आती है। सभ्य, असभ्य, सभी—किसी न किसी रूप में—परस्पर मिलकर अपनी शक्ति बढ़ाते और काम करते हैं। बहुत से जंगली मिलकर बड़े-बड़े शिकार करते हैं और सब मिलकर उसका मांस बाँट लेते हैं। बहुत से मल्लाह मिलकर मछलियाँ पकड़ते और समुद्र से मोती निकालते हैं; उन सबको अपने-अपने परिश्रम के अनुसार लाभ होता है। तात्पर्य यह कि सब प्रकार के बड़े-बड़े काम, जो एक या दो व्यक्तियों से नहीं हो सकते, बहुत से लोग मिलकर बड़ी सुगमता से कर लेते हैं। विलायत में अनेक ऐसे बहुत बड़े-बड़े कारखाने हैं जिन्हें थोड़े से आदमियों ने मिलकर कम पूँजी से चलाया था और आज उन्हीं में करोड़ों रुपए साल का माल तैयार होता और बिकता है। उनके कारण हिस्सेदारों को तो लाभ होता ही है पर और लोग भी उनके द्वारा सस्ता और अच्छा माल पाते हैं। इसके सिवा कारखानों के लाभ का कुछ अंश सार्वजनिक कार्यों में भी लगाया जाता है और उससे पुस्तकालय और अनाथालय आदि खोले जाते हैं।

ऐसी कंपनियों और कारखानों की सफलता का एक विलक्षण कारण है। उनके यहाँ कोई चीज उधार नहीं बिकती;

सबके लिये नगद दाम देना पड़ता है। और वास्तव में भली भाँति व्यापार चलाने के लिये इस नियम का पालन बहुत आवश्यक है। उधार की छोटी-छोटी बहुत सी रकमें प्राय: डूब जाती हैं जिसके कारण लाभ का और कभी-कभी मूल का भी बहुत बड़ा अंश निकल जाता है। अनेक छोटे-छोटे व्यापारों के जल्दी बैठ जाने का कारण यही उधार बेचना है।

इँगलैंड में एक प्रकार की को-आपरेटिव सोसाइटियाँ जमीन और जायदाद बेचने और खरीदने का काम करती हैं। उनमें अधिकांश मध्यम श्रेणी के और कुछ अंतिम श्रेणी के लोग सम्मिलित हैं। वे लोग पूँजी संग्रह करके जमीनें खरीदते और उन पर मकान बनाते हैं। जो व्यक्ति कोई मकान खरीदना चाहता है वह उस सोसाइटी का मेंबर बन जाता है और उसी के बनवाए हुए मकान में रहने लगता है। मकान के भाड़े के बदले वह प्रति मास कुछ निश्चित धन, चंदे की तरह, सोसाइटी में जमा करता है और सोसाइटी के नियमानुसार निश्चित समय बीत जाने पर वह मकान उस रहनेवाले मेंबर का हो जाता है। इस प्रकार यह सोसाइटी एक सेविंग बंक का काम देती है जिसमें किसी विशेष कार्य के लिये रुपया जमा किया जाता है। जो लोग मकान नहीं खरीदना चाहते उन्हें उसके बदले लाभ का अच्छा अंश दिया जाता है। इँगलैंड के एक छोटे से गाँव में, जहाँ केवल आठ हजार आदमी रहते हैं, ऐसी ही एक सोसाइटी है। उसके सदस्यों की संख्या

६६०० और एक वर्ष का लाभ १६००० पाउंड है, अर्थात् प्रति सदस्य को २४ पाउंड वार्षिक लाभ होता है। इस सोसाइटी में व्यापारी, दूकानदार, मजदूर, स्त्रियाँ, पुरुष सभी सम्मिलित हैं। उनमें से अधिकांश ने अपने लिये बड़े-बड़े मकान भी खरीद लिए हैं। आवश्यकता पड़ने पर वे लोग सोसाइटी के पास ही अपना मकान बंधक रखकर रुपया भी ले सकते हैं। इस प्रकार की सोसाइटियाँ बहुत अच्छा काम करती हैं और उनसे लोगों को अनेक प्रकार के लाभ होते हैं।

छठा प्रकरण

जान-बीमा

अपनी मृत्यु के बाद बाल-बच्चों के गुजारे के प्रबंध के लिये जान का बीमा कराना भी बहुत अच्छा उपाय है। संभव है कि अपने आश्रितों के भरण-पोषण की वृद्धि के लिये यथेष्ट धन संग्रह करने में बहुत अधिक समय लग जाय; इसके सिवा बीच-बीच में अनेक ऐसे अवसर भी आ पड़ते हैं जब कि थोड़ा-बहुत संग्रह किया हुआ धन भी खर्च करने की आवश्यकता होती है। इसलिये जो धन नित्य या प्रति मास अपने पास जमा किया जाता है, उसका कोई भरोसा नहीं।

लेकिन जान का बीमा करा लेने पर इस प्रकार की कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं। उसकी मासिक, त्रैमासिक या वार्षिक बचत तत्काल बीमा-कंपनी में चली जाती है जिससे बीमा करानेवाले के उद्देश्य की सिद्धि होती है। अपने चंदे की पहली किस्त देते ही उसका मनोरथ पूरा हो जाता है। अब यदि वह उसी दिन भी मर जाय तो उसके बाल-बच्चे बीमे की पूरी रकम पाने के अधिकारी हो जाते हैं।

इस उपाय से एक और बड़ा लाभ होता है। जो मनुष्य जान का बीमा करा लेता है वह चंदे की किस्त चुकाने की चिंता के कारण सदा सावधानी से खर्च करता है। इसके

सिवा उसे मृत्यु के समय किसी प्रकार का अधिक कष्ट नहीं होता, उसे अपने बाल-बच्चों के लिये कोई चिंता नहीं रह जाती। विधवाओं और अनाथों के भरण-पोषण के लिये जान का बीमा कराना बहुत उपयोगी होता है। बीमा कराने में मनुष्य को अपनी आय का कुछ अंश बचाकर निश्चित समय पर बराबर बीमा-कंपनी को देना पड़ता है और बीमा कराने-वाले की मृत्यु पर उसके परिवार को कुछ निश्चित धन कंपनी से मिलता है। इस उपाय से हजारों-लाखों आदमी दरिद्र और असहाय होने से बच जाते हैं। जिन लोगों की पूँजी या आय कम होती है वे इस उपाय से अपने परिवार के जीवन-निर्वाह के लिये बहुत अच्छा प्रबंध कर सकते हैं।

प्रायः मध्यम श्रेणी के लोग, जो अच्छा खाते, बढ़िया पह-नते, बड़े आनंद से अपना जीवन बिताते और अपने बाल-बच्चों को थोड़ी-बहुत शिक्षा भी दिलवाते हैं, मर जाने पर अपने परिवार के लिये कुछ भी नहीं छोड़ जाते। यदि उन लोगों ने किसी बीमा-कंपनी को सौ रुपए वार्षिक भी दिया होता तो उनके मरने पर उनके परिवार के लोगों को कई हजार रुपए इकट्ठे मिल जाते और वे लोग घोर दरिद्रता से बच जाते। लेकिन उन लोगों ने अपना यह कर्तव्य किसी रूप में पालन न किया जिसका फल यह हुआ कि उनके परिवार के लोग अचानक घोर विपत्ति में फँस गए और पैसे-पैसे के लिये दूसरों का मुँह देखने लगे।

यह कार्य्य केवल अविचार और अदूरदर्शिता का नहीं बल्कि निर्दयता का भी है। विवाह करके स्त्री को घर में लाना, छोटे-छोटे बाल-बच्चे उत्पन्न करके भली भाँति उनका लालन-पालन करना और उन्हें सुखपूर्वक रखकर चटोरा और खर्चीला बनाना और अंत में उन्हें अनाथालयों में जाने, गलियों में मारे-मारे फिरने या अपने संबंधियों के टुकड़े तोड़ने के लिये छोड़ जाना समाज और परिवार का बड़ा भारी अपराध करना है। आजकल के कठिन समय को देखते हुए मानना पड़ता है कि बहुत ही कम लोग अपने परिवार के पोषण के लिये यथेष्ट धन-संग्रह करने में समर्थ होते हैं। उनके परिवार के साथ ही साथ खर्च भी दिन पर दिन बढ़ता जाता है; और यदि वे कभी थोड़ा सा रुपया बचा भी लेते हैं तो यही समझते हैं कि इतना थोड़ा रुपया बचाना और न बचाना दोनों ही बराबर है। उनकी यह समझ उन्हें एकदम निराश कर देती है और वे अपने परिवार का कोई प्रबंध नहीं कर सकते।

मान लीजिए कि एक गृहस्थ कोई कार्य आरंभ करता है और समझता है कि दस पाँच बरस बाद वह उसमें लाभ करके इतना धन अवश्य बचा लेगा जो उसके जीवन के बाद परिवार के पोषण के लिये यथेष्ट होगा। पर कुछ समय बाद जब वह सोचता है कि जीवन का कोई भरोसा नहीं और न जाने कब मृत्यु आ जाय, तो अपनी जान का बीमा करा लेता है। वह दो हज़ार रुपए का बीमा कराता है, जिसके लिये

उसे सौ रुपया वार्षिक देना पड़ता है, पहली किस्त के सौ रुपए देते ही मानों निश्चित हो गया कि उसके परिवार के लोगों को उसकी मृत्यु के बाद दो हज़ार रुपए अवश्य मिलेंगे। अब चाहे उसका देहांत तत्काल हो जाय और चाहे बीस वर्ष बाद हो, पर वह स्वयं एक प्रकार से निश्चित हो गया।

यदि वह यही सौ रुपए वार्षिक किसी बंक में जमा करता या और कहीं सूद पर लगाता तो उसे दो हजार रुपए जमा करने में बीस बरस लग जाते लेकिन बीमा करा लेने के कारण अब उसे बीस वर्ष तक की सब प्रकार की चिंताओं से छुट्टी मिल गई। उसके वर्त्तमान सुख में भविष्य की चिंता बाधा नहीं डाल सकती। अब यदि वह बराबर सौ रुपए वार्षिक देता चला जाय तो उसके परिवार के लोगों को उसके मरने के बाद निश्चय दो हजार रुपए मिल जायँगे। बहुत से लोग ऐसे भी निकल आते हैं जो बहुत अधिक दिनों तक जीने के कारण बीमे की रकम से कहीं अधिक धन कंपनी को दे देते हैं। यही बढ़ी हुई रकम उन लोगों के परिवार को मिल जाती है जो शीघ्र ही या थोड़ी अवस्था में मर जाते हैं। जो लोग बहुत अधिक दिनों तक जीवित रहते हैं और बीमे की रकम से कहीं अधिक धन कंपनी को दे देते हैं, उन्हें भी अपने आप को घाटे में न समझना चाहिए; क्योंकि यदि वे बीमा न कराते तो या तो वे उतना अधिक धन संग्रह ही न कर सकते

और यदि संग्रह भी कर लेते तो उसके लिये उन्हें अनेक प्रकार की झंझटों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता।

भारतवर्ष में कहीं-कहीं और विलायत में सब जगह बड़े-बड़े व्यापारी अपने माल के गोदामों, दूकानों और कल-कारखानों तक का बीमा करा लेते हैं और यदि कभी उनमें आग लग गई या किसी अन्य दुर्घटना के कारण उनकी भारी हानि हो गई तो बीमा-कंपनियों से उन्हें तत्काल बड़ी रकम मिल जाती है। मार्च सन् १९१४ में बंबई में रुई के एक बहुत बड़े गोदाम में आग लग जाने के कारण सवा करोड़ रुपयों का माल जल गया था; पर कुल माल का बीमा हो चुकने के कारण उसके मालिकों की कुछ भी हानि नहीं हुई और उन्हें कुल रुपया बीमा-कंपनियों से मिल गया। लेकिन इस प्रकार के बीमे की अपेक्षा अपनी जान का बीमा कराना अधिक आवश्यक और लाभदायक होता है। साधारण स्थिति के लोगों को तो अपनी जान का बीमा कराना एक प्रकार का कर्तव्य समझना चाहिए। जिस प्रकार अपने जीवन में स्त्री और बच्चों के खाने-पहनने का प्रबंध करना हमारा कर्त्तव्य है उसी प्रकार अपनी मृत्यु के बाद भी उनके लिये प्रबंध कर रखना हमारे लिये कर्त्तव्य है। हमारा यह कर्त्तव्य बहुत ही महत्त्व-पूर्ण है और उसके पालन का यह उपाय भी उतना ही सरल है। यह उपाय, साधारण स्थिति के, प्रायः सभी लोग भली भाँति कर सकते हैं। यही एक ऐसा सरल और निर्दोष

उपाय है जिसका विरोध किसी प्रकार के तर्क से नहीं किया जा सकता, लेकिन दुःख इस बात का है कि भारतवर्ष में अभी लोग उसका लाभ और उपयोग नहीं समझ सके हैं; बल्कि बहुत से लोग तो ऐसे हैं जो उसका नाम भी नहीं जानते।

यूरोप में एक और प्रकार की समितियाँ होती हैं जिन्हें मित्रसमाज या मित्रमंडल कह सकते हैं। बहुत से श्रमजीवी मिलकर एक समिति गठ लेते हैं और उसमें कुछ धन संग्रह करते हैं। जब उस समिति का कोई सदस्य बीमार हो जाता या और किसी प्रकार की विपत्ति में फँस जाता है तब उस संगृहीत धन से उसकी सहायता की जाती है। मिलों, खानों और दूसरे कारखानों में काम करनेवाले मजदूर अपनी-अपनी समितियाँ अलग बनाते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उन्हीं के द्वारा एक दूसरे की सहायता करते हैं। और देशों की अपेक्षा इँगलैंड में ऐसी समितियाँ बहुत अधिक हैं। फ्रांस में प्रति ७६ आदमियों में, बेलजियम में प्रति ६४ आदमियों में और इँगलैंड में प्रति ९ आदमियों में एक आदमी इस प्रकार की किसी न किसी समिति का सदस्य होता है। इँगलैंड की ऐसी समितियों के पास इस समय पंद्रह बीस करोड़ रुपए जमा हैं और उनके सदस्य, जो केवल गरीब मजदूर होते हैं, अपनी साप्ताहिक आय में से थोड़ा-थोड़ा बचाकर प्रायः तीन करोड़ रुपए वार्षिक एकत्र करते हैं!

फ्रांस या बेलजियम में ऐसी समितियाँ कम हैं क्योंकि वहाँ के लोग किफायती और सुखी होते हैं। वे लोग या तो अपनी आय से जमीन-जायदाद मोल ले लेते हैं या उसे सार्वजनिक फंड में लगा देते हैं। वहाँ के लोग जमींदारी अधिक पसंद करते हैं। सब प्रकार से किफायत करके वे लोग धन बचाते और जमीनें लेते हैं। उनका सार्वजनिक फंड भी कुछ कम नहीं होता। फ्रांस के कृषकों और श्रम-जीवियों ने थोड़ा-थोड़ा धन संग्रह करके इतनी बड़ी रकम खड़ी कर ली थी कि उसकी सहायता से उन्होंने अपनी मातृभूमि को जर्मन लोगों के हाथों में जाने से बचा लिया। इस प्रकार के फंड को यह लोग जातीय ऋण कहते हैं। यह धन उस राज्य की प्रजा एकत्र करती है और आवश्यकता पड़ने पर राज्य को ऋण-स्वरूप देती है।

इस जातीय ऋण की व्यापकता आप इसी से समझ सकते हैं कि फ्रांस की जन-संख्या का आठवाँ भाग इसका हिस्सेदार और मालिक है और प्रत्येक मनुष्य का उसमें लगभग १०५) लगा हुआ है। मध्य और पश्चिम यूरोप में केवल फ्रांस ही एक ऐसा देश है जहाँ सर्वसाधारण में ही धन बहुत अधिक बँटा हुआ है जिसके कारण वहाँ के साधारण और छोटे आदमी भी बहुत सुखी हैं। नहीं तो बाकी और सब देशों की दशा इससे बिलकुल भिन्न है। वहाँ जो लोग धनी हैं वे दिन पर दिन अधिक धनवान् होते जाते हैं और जो लोग

निर्धन हैं वे दिन पर दिन अधिक दरिद्र होते जाते हैं। और देशों की अपेक्षा फ्रांसवालों के सुखी होने का कारण यही है कि वे लोग मितव्ययी होते हैं और धन का सदुपयोग करना जानते हैं।

जब लोग इस बात की आवश्यकता समझने लगते हैं कि आय कम होने के कारण हम विपत्ति-काल के लिये अधिक रुपए नहीं बचा सकते और कभी न कभी हमें बड़ी कठिनाई सहनी पड़ेगी, तब वे ऐसी समितियाँ स्थापित करते हैं। मनुष्य जब पहले-पहल सयाना होता और कोई कार्य आरंभ करता है तब उसी समय उसे अपनी आय का कुछ अंश बचाने का अवसर नहीं मिलता। अनेक प्रकार के खर्च उसके पीछे लगे रहते हैं और उसी थोड़ी आय में उसे सब कुछ करना पड़ता है। यदि सौभाग्यवश वह कुछ रुपए बचा भी सका तो वे बीच-बीच में बीमारी या बेकारी के दिनों में खर्च हो जाते हैं। यह दशा उसी समय तक की है जब तक वह अकेला हो; पर यदि उसके पीछे गृहस्थी भी लगी हो तो उसे दूसरों के आश्रित होने या भीख माँगने के सिवा और कोई उपाय दिखलाई नहीं देता। इन्हीं निकृष्ट उपायों से बचने के लिये उसे ऐसी समितियाँ स्थापित करनी पड़ती हैं। सब लोग मिलकर अपनी-अपनी आय का कुछ अंश एक स्थान पर एकत्र करते हैं और जब बीमार होते हैं या उनपर और किसी प्रकार की विपत्ति आती है तब उस संगृहीत धन से उन्हें सहायता मिला करती है।

इस प्रकार की समितियाँ बनाना बहुत सहज है। यदि प्रत्येक सदस्य ॥) या ।) मासिक उसमें चंदा दिया करे तो अच्छी रकम खड़ी हो जाती है और आवश्यकता पड़ने पर सबको उससे सहायता मिल सकती है। विलायत की किसी-किसी समिति में विधवाओं या अनाथों के लिये भी कुछ रुपया अलग निकाल दिया जाता है जो किसी सदस्य के मर जाने पर उसकी विधवा या संतान को दिया जाता है। ऐसे-ऐसे उपायों से समाज का बहुत बड़ा उपकार होता है। जिनके लिये और जिनके द्वारा ये समितियाँ बनती हैं वे इससे बहुत कुछ लाभ उठाते हैं। इस प्रकार मनुष्य मितव्यय के लाभ भी भली भाँति समझने लगता है और यदि उसकी आय कुछ अधिक हो तो वह अलग भी अपने लिये कुछ धन बचा सकता है।

इस प्रकार की समितियों के उद्देश्य बहुत ही उच्च और लाभदायक होते हैं। ऐसी समितियों से समाज की जड़ मजबूत होती है और आगे अनेक अच्छे कार्य्य किए जा सकते हैं। इससे समाज और देश की दरिद्रता और कष्ट से बहुत कुछ रक्षा होती है क्योंकि उसके द्वारा धन व्यर्थ नष्ट होने से बचकर उपयोगी कार्य्य में लगता है। भारत सरीखे दरिद्र देश में भी यदि यथासंभव ऐसी समितियाँ स्थापित की जा सकें तो असंख्य रोगी, दीन और अनाथ उनसे अच्छी सहायता पा सकते हैं।

सातवाँ प्रकरण

सेविंग बंक

एक कहावत है कि "घर-घर मट्टी के चूल्हे होते हैं।" इस मट्टी के चूल्हे को लोग बड़े यत्न से छिपाकर रखते हैं। केवल घरवालों को ही उस मट्टी के चूल्हे का हाल मालूम रहता है और बाहरवालों को उसका बहुत कम पता लगता है। पर तो भी यह चूल्हा बहुत दिनों तक छिपा नहीं रह सकता। वह कभी न कभी, किसी न किसी रूप में, प्रकट हो ही जाता है। यह चूल्हा और कुछ नहीं, केवल "दरिद्रता" है। इस दरिद्रता को बड़े भारी रहस्य की भाँति संसार के आधे लोग अनेक कष्ट सहकर भी दूसरों से छिपाए रखते हैं। जब वृद्धावस्था में, बीमार होने पर या और विपत्तियाँ पड़ने पर लोगों का हाथ बिलकुल खाली हो जाता है तब उनमें से अधिकांश इस चूल्हे को बड़े यत्न से छिपाने लगते हैं।

एक तो भारतवासी योंही दरिद्र होते हैं। दूसरे जब कहीं किसी की नौकरी छूट गई और वह बेकार हो गया तब फिर उसके कष्ट का ठिकाना नहीं। जब तक उन्हें और कोई काम-धंधा न मिले तब तक उन्हें बड़े कष्ट से अपने दिन बिताने पड़ते हैं। लेकिन जो व्यक्ति पहले से ही कुछ धन संग्रह कर रखता है से उतनी कठिनता नहीं उठानी पड़ती। जब

मनुष्य के पास आवश्यकता से अधिक धन आ जाता है तब उसे खर्च करने की उसकी अधिक इच्छा होती है। ऐसे अवसरों पर लोग कहा करते हैं कि "हमारे हाथों में छेद हो जाता है" और वास्तव में बात भी ऐसी ही है। उसे अनेक प्रकार के संगी-साथी मिल जाते हैं, घर में पड़ा रहना उसे भला नहीं मालूम होता और वह अनेक प्रकार के दुर्व्यसनों में फँस जाता है। इसी अवसर पर यदि उसकी नौकरी छूट जाय तो उसके पुनः निर्धन होने में अधिक देर नहीं लगती। लेकिन यदि यही व्यर्थ नष्ट किया हुआ धन वह बचा रखता तो उसे दूसरी नौकरी मिलने तक कम से कम खाने-पीने की कोई चिंता न रह जाती और यदि वह चाहता तो उसी रुपए से किसी ऐसे स्थान पर जा सकता था जहाँ उसे अच्छी नौकरी मिल जाती।

हम यह नहीं कहते कि मनुष्य केवल रुपए कमा-कमाकर गाड़ता जाय। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि वह धन का सदुपयोग करना सीखे; क्योंकि जीवन-निर्वाह करने, सुखी होने और सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त करने का धन के सिवा और कोई साधन नहीं है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को होश सँभालते ही अपनी आय में से कुछ न कुछ बचाके रखना चाहिए, दिन के दिन अपनी सारी आय खर्च न करके भविष्य के लिये भी थोड़ा-बहुत बचाना चाहिए और परतंत्रता या दरिद्रता से बचने का प्रबंध कर लेना चाहिए। अधिकांश मनुष्य ऐसे निकलेंगे जिन्हें केवल अपनी कमाई के सिवा

और किसी का आसरा नहीं है। ऐसे लोगों के लिये कुछ न कुछ बचा रखना नितांत आवश्यक है। हमारा धन अनेक मित्रों से बढ़कर हमारी सहायता कर सकता है। हमारी भविष्य स्वतंत्रता और प्रसन्नता का मूल हमारा बचाया हुआ धन ही है।

संग्रह किया हुआ धन रखने का एक और अच्छा स्थान सेविंग बंक है। हमारे देश में अनेक बड़े-बड़े बंकों के सिवा स्थान-स्थान पर सरकार की ओर से प्रत्येक डाकखाने में सेविंग बंक खुले हुए हैं। इन्हीं बंकों के कारण हजारों ऐसे आदमी रुपए जमा करने लग गए हैं जिन्हें शायद कभी स्वप्न में भी उसका ध्यान न होगा। जो धन अपने मकान में, अपने ही पास जमा किया जाय, तो वह छोटी-छोटी आवश्यकताएँ पड़ने पर या व्यर्थ भी खर्च किया जा सकता है और इस-लिये उससे कोई उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता। पर यदि वह धन किसी ऐसे स्थान पर रखा जाय जहाँ से उसे लेने में किसी प्रकार की जरा भी कठिनाई हो, तो वह भली भाँति सुरक्षित रह सकता है और केवल बहुत आवश्यकता पड़ने पर ही निकाला जा सकता है। सेविंग बंक एक ऐसा स्थान है जहाँ आप ।) से भी हिसाब खोल सकते और उसके बाद उसमें ―) तक जमा कर सकते हैं। इसलिये सर्वसाधारण के लिये ऐसे बंक बहुत ही उपयोगी होते हैं। इन बंकों में रुपए मारे जाने का कोई डर नहीं होता, कुछ सूद मिलता है और

समय पड़ने पर बहुत सरलतापूर्वक वहाँ से रुपया निकाला या उनमें जमा किया जा सकता है।

सबसे पहले सेविंग बंक इँगलैंड के एक जिले में मिस वेकफील्ड नाम की एक कुमारी ने अठारहवीं शताब्दी के अंत में स्थापित किया था। उस बंक में देहात के गरीब लड़के छोटी-छोटी रकमें जमा किया करते थे। उसके लाभ और गुण देखकर सन् १७९९ में स्मिथ नामक एक पादरी ने एक और बंक स्थापित किया जिसमें गरमी के दिनों में रुपया जमा किया जाता था और वह एक तिहाई सूद-सहित बड़े दिनों पर लौटा दिया जाता था। पादरी की देखा-देखी सन् १८०४ में कुमारी वेकफील्ड ने भी अपना कारबार उसी ढंग पर बढ़ाया और उसमें मजदूर आदि भी रुपया जमा करने लगे। सन् १८०८ में बाथ नामक नगर में वहाँ की कुछ स्त्रियों ने मिल-कर इसी प्रकार का और एक बंक खोला। उसी अवसर पर इँगलैंड की पारलामेंट में भी मजदूरों के लिये बंक के ढंग की एक जातीय संस्था खोलने का प्रस्ताव किया गया था पर उसका कुछ फल न हुआ।

इसके उपरांत पादरी डंकन को नियम और उत्तमतापूर्वक सेविंग बंक चलाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। जिस जिले में वे रहते थे, उसके निवासी बहुत ही दरिद्र और थोड़ी आय-वाले थे। पादरी साहब ने बहुत ध्यानपूर्वक उन लोगों की दशा पर विचार किया और देखा कि लोग कुछ न कुछ धन

अवश्य व्यर्थ नष्ट करते हैं और जो कुछ बचता है उससे गौ, सूअर या जमीन खरीद लेते हैं। सूद के बदले उन्हें दूध, मक्खन और फल आदि मिलते थे। सब बातों पर विचार करके उन्होंने नियमित रूप से एक बंक स्थापित किया। चार वर्ष बाद उनके बंक में प्रायः एक हजार पाउंड जमा हो गए। धीरे-धीरे मजदूरों और कृषकों की देखा-देखी लोहार, बढ़ई और दूसरे कारीगरों ने भी बंक में रुपया जमा करना आरंभ किया और लोग उसके लाभ समझने लग गए। धीरे-धीरे इँगलैंड और स्काटलैंड के अनेक नगरों में इस प्रकार के बंक स्थापित होने लगे और उन्हें दिन पर दिन अधिक सफलता होने लगी।

कुछ समय के उपरांत लोगों ने इसका महत्त्व और अधिक समझा और सन् १८१७ में ऐसे बंकों की संख्या और उपयोगिता बढ़ाने के लिये पारलामेंट से एक कानून भी पास हो गया। तब से अब तक इसकी जो उन्नति हुई है वह वर्णनातीत है। यद्यपि ऐसे बंकों से अब तक बहुत कुछ लाभ हो चुका है, पर तो भी न जाने क्यों मध्यम श्रेणी के लोग उनका बहुत ही साधारण उपयोग करते हैं। अधिक आयवाले लोग ऐसे बंकों से बहुत ही कम संबंध रखते हैं और साधारण या थोड़ी आयवालों का रुपया ही उनमें अधिक जमा होता है। इस उदासीनता का लापरवाही के सिवा और कोई विशेष कारण नहीं हो सकता।

मनुष्य या समाज की उन्नति और सफलता उसके व्यवस्थित होने पर निर्भर है। जिस मनुष्य में आत्मनिर्भरता है वह अवश्य व्यवस्थित है। मनुष्य जितना अधिक व्यवस्थित होता है उसकी दशा उतनी ही अच्छी होती है। मनुष्य को उचित है कि वह अपनी वासनाओं को वश में रखे, और विवेक से काम ले; नहीं तो वह विषय-वासनाओं के हाथ का एक खिलौना बन जायगा। धार्मिक मनुष्य सदा व्यवस्थित रहता है और अपनी इच्छाओं को अपने अधीन रखता है। प्रत्येक कामकाजी मनुष्य नियम और व्यवस्थापूर्वक रहता है। व्यवस्थित रहने से गार्हस्थ्य सुख बहुत अधिक बढ़ जाता है। धीरे-धीरे अभ्यस्त होने पर, जिस प्रकार हम प्रकृति के नियमों का पालन करते हैं, उसी प्रकार, उसके भी अनुयायी बन जाते हैं। उससे बँधे रहने पर भी हमें उसका भास नहीं होता। उसे भी बिलकुल अभ्यास ही समझना चाहिए।

सैनिकों को आज्ञाकारी और व्यवस्थित रहने की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। सन् १८१६ में सैनिकों को व्यवस्थित रखने के अभिप्राय से सेना-विभाग में भी सेविंग बंक खोले जाने का उद्योग हुआ था, पर उसमें पूरी सफलता सन् १८४२ में हुई। तब से सैनिक लाखों पाउंड प्रति वर्ष बचाते और सेविंग बंक में जमा करते हैं। भारतवर्ष से जो रेजिमेंटें लौटकर विलायत जाती हैं वे भी अपने साथ बहुत सा रुपया संग्रह करके ले जाती हैं। सन् १८५७ के गदर के

बाद अनेक रेजिमेंटों ने अपने मित्रों और संबंधियों को मनी-आर्डर भेजने के सिवा कई वर्षों तक ५-६ हजार पौंड प्रति वर्ष जमा किया था।

हमारे देश में सेविंग या और बंकों से हिसाब रखने की बहुत कम प्रथा है। साधारण और छोटे शहरों में लोग बंकों से बहुत कम संबंध रखते हैं और अपना अधिकांश कारबार हुंडी आदि के द्वारा ही करते हैं। लेकिन छोटी-छोटी रकमें हुंडियों में नहीं लगाई जा सकतीं। उन्हें लोग या तो गाड़ रखते हैं या उनसे दूसरों की चीजें रेहन रख लेते हैं। यदि मनुष्य वास्तव में दृढ़-निश्चयी हो और संचय करना चाहे तो वह उसके लिये अनेक उपाय निकाल लेता है। उसके लिये बंक, हुंडी और दूसरे साधन सभी उपयुक्त होते हैं। पर आजकल के नए विचारवालों के लिये सेविंग बंक ही अधिक अनुकूल और उपयोगी हैं, क्योंकि यदि उनका रुपया किसी एक निश्चित स्थान पर जमा न हो तो उसके मेलेतमाशे और खाने-खिलाने में खर्च हो जाने में अधिक विलंब नहीं लगता।

इसमें कोई संदेह नहीं कि मध्यम श्रेणी के अधिकांश लोग इस योग्य हैं कि यदि वे चाहें तो बहुत कुछ रुपया जमा कर सकते हैं। यदि वे लोग दृढ़ता और परिश्रमपूर्वक किसी कार्य्य में लग जायँ तो उन्हें धन-उपार्जन करने में और कोई कठिनता नहीं होती। लेकिन मध्यम श्रेणी के लोग प्रायः

शहरों में ही रहते हैं जहाँ उनके व्यर्थ खर्च बढ़ने के अनेक मार्ग निकल आते हैं। जिनकी आय कुछ अच्छी होती है उन्हें दो-चार मित्र भी मिल जाते हैं और तब उनका व्यय आय से कहीं अधिक बढ़ जाता है। ऐसे लोग यदि दृढ़निश्चयी न हों तो उन्हें उचित है कि आवश्यकता से अधिक रुपए हाथ में आते ही वे उसे कभी अपने पास न रखें और तुरंत किसी स्थान पर जमा कर दें या अपने व्यापार में लगा दें। जब ऐसी बातों का उन्हें कुछ दिनों तक अभ्यास पड़ जायगा, तब फिर आगे उन्हें किसी प्रकार की कठिनता न होगी और वे दृढ़तापूर्वक उन्नति के पथ पर आगे बढ़ते जायँगे।

सेविंग बंक स्थापित होने के बाद आज से प्रायः सत्तर वर्ष पूर्व, इँगलैंड में एक पेनी बंक स्थापित हुआ था। इस पेनी बंक में एक शिलिंग (।।।) से कम और एक पेंस (-) तक की रकम जमा होती थी। इसमें केवल बहुत ही थोड़ी आयवाले और गरीब लोग अपनी गाढ़ी कमाई का कुछ अंश बचाकर जमा किया करते थे। केवल एक वर्ष में, इस पहले बंक में लगभग सोलह सौ पाउंड जमा किए गए थे। इसके बाद एक-एक करके और भी अनेक ऐसे बंक स्थापित होने लगे, जिनमें अच्छी सफलता हुई। लोग पहले बहुत छोटी-छोटी रकमें इन बंकों में जमा करते थे और जब अधिक रुपए जमा हो जाते थे, तब वे उन्हें सेविंग बंक में जमा कर देते थे। जो लोग अपने छोटे-छोटे खर्च के कारण ही सदा

दरिद्र और ऋणी बने रहते थे, वे इन बंकों के कारण सुखी और पूँजीवाले बन गए। इसका कारण यही था कि वे लोग छोटी-छोटी रकमें भी बंक में सुरक्षित रखकर व्यर्थ के अनेक खर्चों से बच जाते थे और जब तक मकान का किराया चुकाने, कपड़ा लेने या और किसी प्रकार के बहुत आवश्यक खर्च का समय न आ जाता, तब तक वे उसमें कभी हाथ नहीं लगाते थे।

इँगलैंड में इस प्रकार के बंकों से दरिद्रों को बहुत सहारा मिलता है। जिनकी आय बहुत ही परिमित होती है वे इससे बहुत अधिक लाभ उठाते हैं। जो बहुत छोटी आयवाले लोग कोई कपड़े बनवाने, घड़ी खरीदने या और किसी काम के लिये रुपए जमा करना चाहते हैं, वे एक-एक आना इस बंक में जमा करते हैं और पूरा रुपया हो जाने पर वह चीज मोल लेते हैं। इन बंकों से सबसे बड़ा लाभ छोटे-छोटे बच्चों को होता है। मिलों और कारखानों में काम करनेवाले छोटे-छोटे लड़के, औजार, पुस्तकें आदि खरीदने के लिये इन्हीं बंकों में रुपए जमा करते हैं। अनेक ऐसे उदाहरण मिले हैं जिनसे मालूम होता है कि छोटे बालकों ने इन्हीं बंकों में जमा किए हुए रुपए से अपने बड़े भाई, बहिन, माता या अन्य संबंधियों को बड़ी विपत्ति में पड़ने से बचा लिया था। दूसरा बड़ा लाभ इन बंकों से बालकों को यह होता है कि वे बहुत छोटी ही अवस्था में मितव्यय और संग्रह करना सीख लेते हैं जो

उनके भविष्य जीवन में उनके लिये बहुत उपयोगी और लाभ-दायक होता है। ये ही बालक बड़े होकर इन्हीं सद्‌गुणों के कारण अपने देश और समाज को बहुत लाभ पहुँचाते हैं और उन्हें उन्नत और पुष्ट करते हैं।

इस प्रकार लोगों को इन बंकों से अनेक प्रकार की सहायता मिलती है और वे अनेक प्रकार के अपव्यय और दुर्गुणों से बचकर सुमार्ग में लगते हैं। इन्हीं के कारण वे लोग आवश्यकता पड़ने पर औरों का बहुत कुछ उपकार करने में समर्थ होते हैं। इन बंकों का इँगलैंड में इतना अधिक प्रचार है कि दरिद्र और निम्न श्रेणी के बालकों के प्रत्येक स्कूल के साथ एक ऐसा बंक भी रहता है। ऐसे बंकों में जमा होने-वाले धन की संख्या देखकर कहना पड़ता है कि यदि दरिद्र बालकों-द्वारा इतना धन संग्रह किया जा सकता है तो अवश्य ही धनवानों के बालक इससे कहीं अधिक धन संग्रह करके अपना और दूसरों का उपकार कर सकते हैं।

एक और लाभ इन बंकों से यह होता है कि जब बालक एक दूसरे की देखा-देखी रुपए जमा करने लगते हैं तब उनके माता-पिता भी उनका अनुकरण करने लग जाते हैं। जब बालक-बालिका अपनी-अपनी 'पास बुक' घर ले जाकर माता-पिता को दिखलाते हैं कि उनकी छोटी-छोटी रकमें एक सुरक्षित स्थान पर रखी हैं और उन पर बराबर सूद चढ़ता है तब वे समझते हैं कि हमारी संतान बहुत योग्य है और अच्छे

मार्ग पर चल रही है। यदि माता-पिता कुछ भी समझदार हों तो वे बालक की प्रशंसा करते हुए स्वयं भी उनका अनुकरण करके किफायत और रुपया जमा करने लग जाते हैं। फल यह होता है कि जिस दिन बालक अपना दो-चार आना बंक में जमा करने जाता है तो उस दिन पिता भी उसे एक रुपया या आठ आना जमा करने के लिये दे देता है। इस प्रकार जब इस उत्तम कार्य्य का आरंभ हो जाता है तब घर के और लोगों पर भी उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है और वे भी उसमें यथासंभव सहायता देने लगते हैं। इस कार्य्य से माता-पिता अधिक सचेत और मितव्ययी हो जाते हैं और अपने दूसरे छोटे बच्चों को भी वैसी ही उत्तम शिक्षा देते हैं। इँगलैंड में प्रायः देखा गया है कि माताएँ अपने छोटे-छोटे बालकों को अपने साथ, या गोद में लेकर, उनकी रकमें बंक में जमा करने जाती हैं। एक बार एक ऐसी स्त्री मर गई जो अपने दो छोटे-छोटे बच्चों को साथ लेकर बंक में उनका रुपया जमा करने जाया करती थी। उसके मरने पर उसके पति को भी विवश होकर वैसा ही करना पड़ा और जब उसे इस प्रकार रुपए जमा करने के लाभ मालूम हुए तब उसने स्वयं अपनी तरफ से भी बहुत अच्छी रकम खड़ी कर ली।

नीति का वचन है कि जिस गृहस्थी में स्त्री का समुचित आदर होता है वहाँ सब प्रकार के सुख और संपन्नता का

समावेश रहता है। अनेक बड़े-बड़े विद्वानों और पंडितों का मत है कि बिना स्त्री को सुखी किए और उसकी सहायता लिए कोई व्यक्ति सुखी और संपन्न नहीं हो सकता। और जो स्त्री यथाशक्ति अपने पति और परिवार को सुखी तथा संपन्न रखने का उद्योग न करे और इस कार्य्य में अपने पति को यथेष्ट सहायता न दे वह 'स्त्री' कहलाने के योग्य नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि गृहस्थी की बाग पुरुषों के हाथ में ही होती है, पर उसे अपने इच्छानुसार इधर-उधर मोड़ने का अधिकार स्त्री को ही होता है। वास्तव में स्त्रियाँ जैसा चाहती हैं पुरुषों को वैसा ही बना लेती हैं। गृहस्थी के कामों में किफायत करके भविष्य के लिये कुछ बचाने का काम अधिकतर स्त्रियों की ही शक्ति में है। ऐसे कामों का भार स्त्रियों पर ही होता है और वे ही उन्हें बिगाड़ या सुधार सकती हैं।

सभ्य देशों में लोग मितव्यय को इतना अधिक आवश्यक और महत्त्व-पूर्ण समझते हैं कि पाठशालाओं में छोटे-छोटे बालकों के लिये वह पाठ्य-विषय बना दिया गया है। शिक्षक लोग बालकों को बहुत थोड़ी अवस्था में ही धन का महत्त्व और उपयोग बतलाते हैं और उन्हें मितव्ययी होने की शिक्षा देते हैं। बेलजियम की जातीय पाठशालाओं में यह प्रथा प्रायः पचास वर्ष से प्रचलित है। वहाँवालों का यह विश्वास है कि अपने देश को संपन्न और सुखी बनाने के लिये छोटे-

छोटे बालकों को मितव्यय की शिक्षा देनी बहुत आवश्यक है। उनका यह विचार बहुत से अंशों में इसलिये ठीक है कि ये ही बालक बड़े होकर नागरिक बनते हैं और अपने देश को उन्नत या अवनत बनाना उन्हीं पर निर्भर होता है।

किसी पुरुष या स्त्री को सयाने होने पर किसी बात की शिक्षा देना बहुत ही कठिन होता है। विशेषतः ऐसे लोगों को, जो सदा रुपए को पानी की भाँति बहाते आए हों, मितव्यय की शिक्षा देना और भी अधिक दुष्कर हो जाता है। उन्हें अधिक और अनावश्यक खर्च करने का अभ्यास सा हो जाता है और तब वे धनाभाव के कारण बहुत अधिक कष्ट पाकर भी अपनी पहली बुरी आदत नहीं छोड़ सकते। लेकिन छोटे बालकों को पहले से ही उस बुरे अभ्यास से बचा रखना बहुत सहज होता है। उन्हें आरंभ में जैसी शिक्षा दी जाती है, आगे चलकर वे उसी प्रकार कार्य्य करते हैं। बालकों को जिस प्रकार इतिहास या गणित की शिक्षा दी जा सकती है उसी प्रकार उन्हें मितव्ययी होना भी सिखाया जा सकता है। योग्य शिक्षक उन्हें समय-समय पर मितव्यय के लाभ समझा सकते हैं। सब बालकों को घर से पैसा-दो पैसा, या आना-दो आना खर्च के लिये मिलता है, और यदि शिक्षक चाहे तो उन पैसों या आनों को किसी उपयोगी और आवश्यक कार्य्य के लिये उनसे जमा करा सकता है। इस शिक्षा का फल बहुत ही संतोषप्रद और शुभ होता है। छोटी-

छोटी बालिकाएँ अपने जमा किए हुए पैसों से ऊन और सूत मोल लेकर उनसे मोजे, गुलूबंद और दूसरी चीजें बनाया करती हैं और समय पड़ने पर वे चीजें दूसरे दरिद्र बालकों को सहायतार्थ दे देती हैं। आसपास के और लोगों पर ऐसी बातों का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है और वे उससे शिक्षा प्राप्त करते हैं। बेलजियम के विद्यार्थियों के जमा किए हुए पचासों हजार पाउंड इस समय एक बंक में रखे हैं जिसका अच्छा सूद मिलता है। इटली, फ्रांस, हालैंड और इँगलैंड में भी यह प्रथा प्रचलित हो रही है और उससे लोग अच्छा लाभ उठाते हैं।

यह एक साधारण बात है कि जब मनुष्य को कोई अच्छा साधन मिल जाता है तब वह उससे लाभ उठाने लग जाता है। यदि किसी स्थान पर एकाध सुभीते का बंक स्थापित हो जाय तो बहुत से लोग उसमें रुपया जमा करने लग जाते हैं। सन् १८५० में, जब कि सेविंग बंक आरंभ हुए थे, इँगलैंड में वहाँ के लोग औसत १६) उनमें जमा किया करते थे, पर १९०८ में, जब कि सेविंग बंकों की संख्या बहुत अधिक हो गई थी, लोगों ने औसत ८६) जमा किए थे। डाकखाने के सेविंग बंक में रुपया जमा करने में अनेक सुविधाएँ भी होती हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि वह रुपया बहुत ही सुरक्षित रहता है मानों वह सरकार की जिम्मे-दारी में हो। दूसरी सुविधा उसमें यह होती है कि

एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपना खाता बड़ी सरलता से बदला जा सकता है। भारत के प्रत्येक डाकखाने में इस प्रकार के सेविंग बंक मौजूद हैं जिनमें कसबों और छोटे शहरों में रहनेवालों को रुपए जमा करने में बहुत सुभीता होता है। जिन स्थानों पर कोई बड़ा बंक या उसकी कोई शाखा न हो, वहाँ इसी प्रकार के बंकों से बहुत लाभ हो सकता है।

आठवाँ प्रकरण

तुच्छ चीजें

छोटी-छोटी चीजों या बातों की ओर से लापरवाह रहनेवाले लोग ही संसार में अधिक दुःख उठाते और धोखा खाते हैं। मनुष्य-जीवन छोटी-छोटी घटनाओं की शृंखला-मात्र है। देखने में तो ये घटनाएँ बहुत ही छोटी और साधारण मालूम होती हैं लेकिन मनुष्य की प्रसन्नता और सफलता उन्हीं घटनाओं पर निर्भर है। इन्हीं छोटी-छोटी बातों से मनुष्य का चरित्र बनता है और इन्हीं छोटी-छोटी बातों पर पूरा ध्यान रखने से मनुष्य को अपने कारबार में सफलता होती है। यदि छोटी-छोटी चीजें ठीक स्थान पर सजाकर रखी जायँ तो घर की शोभा बढ़ती है और वहाँ रहनेवालों को सुभीता होता है, इसी प्रकार जिस राज्य में छोटी-छोटी चीजों का भी यथेष्ट ध्यान रखा और प्रबंध किया जाता है वह राज्य सर्वांगपूर्ण होता है।

छोटे-छोटे अनुभव और ज्ञान का सावधानतापूर्वक संग्रह करते रहने से ही अच्छे-अच्छे अनुभव और ज्ञान का भांडार तैयार होता है। जो लोग छोटी-छोटी बातों से लापरवाह रहते हैं और अपने जीवन में किसी प्रकार का संग्रह नहीं कर सकते, उन्हें कभी किसी काम में सफलता नहीं होती। वे

लोग अपने मन में चाहे भले ही समझ लें कि संसार उनके विरुद्ध है; पर वास्तव में वे लोग आप ही अपने शत्रु होते हैं। बहुत से लोग "सौभाग्य" पर बहुत विश्वास रखते हैं पर अन्य विश्वासों की भाँति अब धीरे-धीरे यह विश्वास भी संसार से उठता जा रहा है। अब लोग धीरे-धीरे समझने लग गए हैं कि सौभाग्य और कुछ नहीं, केवल उद्योग का फल है। इसका तात्पर्य्य यही है कि जो मनुष्य जितना ही अधिक परिश्रम करता और छोटी-छोटी बातों पर ध्यान रखता है, उसे अपने कार्य्यों में उतनी ही सफलता होती है। जो लोग निरुद्यमी और लापरवाह होते हैं उनका भाग्य कभी नहीं खुलता। यह एक नियम है कि जो लोग परिश्रम करने और उसका फल पाने का यथेष्ट उद्योग नहीं करते वे उससे वंचित रह जाते हैं।

मनुष्यत्व प्राप्त करने के लिये भाग्य की नहीं बल्कि परिश्रम की आवश्यकता होती है। भाग्य सदा परिवर्त्तित होने के लिये तैयार रहता है। यदि दृढ़ता और ध्यानपूर्वक किसी कार्य्य के लिये परिश्रम किया जाय तो अवश्य उससे कुछ न कुछ अच्छा फल निकलता है। जो लोग भाग्य पर निर्भर रहते हैं वे अपने बिछौने पर पड़े-पड़े चाहते हैं कि ईश्वर छत फाड़कर हमारे लिये खजाना भेज दे; पर परिश्रमी आदमी सबेरे छः बजे उठकर अपने काम में लग जाता है और अपने सौभाग्य की नींव डाल देता है। भाग्य केवल अवसर पर निर्भर रहता है पर परिश्रम को अपने कृत्यों का सहारा होता

है। भाग्य मनुष्य को अवनति की ओर ढकेलता है और परिश्रम उसे उन्नति और स्वतंत्रता की ओर अग्रसर करता है।

प्रत्येक गृहस्थी में ऐसी छोटी-छोटी अनेक बातें होती हैं जिन पर यदि पूरा ध्यान दिया जाय तो उससे मनुष्य के स्वास्थ्य और सुख में बहुत वृद्धि हो जाती है। यदि घर की सब चीजें स्वच्छ और साफ रखी जायँ तो उससे मनुष्य को अनेक शारीरिक और नैतिक लाभ होते हैं जिनसे उसको सुधरने में बहुत सहायता मिलती है। यदि घर की वायु को हम तुच्छ समझकर उसकी ओर से लापरवाह हो जायँ और उसकी स्वच्छता का कोई प्रबंध न करें तो हमें अवश्य कष्ट उठाना पड़ेगा। इसी प्रकार यदि हम धूल और गरदे से लापरवाह हो जायँ तो हमें खाँसी, ज्वर तथा और बीमारियाँ हो जायँगी। तात्पर्य्य यह कि गृहस्थी में हम जिन चीजों को तुच्छ समझते और जिन पर कुछ भी ध्यान नहीं देते उनका परिणाम हमारे लिये बहुत ही बुरा होता है।

छोटी-छोटी बातों से ही मनुष्य की योग्यता और प्रवृत्ति का ठीक-ठीक पता लग जाता है। एक बार एक मनुष्य को एक नौकर की आवश्यकता हुई थी। नौकरी के लिये उसके पास बीसियों आदमी आए। उसने सबको थोड़ा-थोड़ा नमक एक पुड़िया में बाँधने के लिये दिया और सबकी क्रिया को बहुत ध्यानपूर्वक देखा। अंत में उन सबमें से उसने उसी व्यक्ति को नौकर रखा जिसने अपनी पुड़िया बहुत यत्न और स्वच्छता

से बाँधी थी। उसने इतने छोटे काम से ही उस व्यक्ति की योग्यता का पता लगा लिया था।

जो लोग तुच्छ बातों की ओर से लापरवाह रहते हैं वे बड़ी-बड़ी संपत्तियाँ और सुयोग खो देते हैं। यदि किसी बड़े जहाज या नाव में एक छोटा सा भी छेद हो जाय तो उसके डूबने में किसी प्रकार का संदेह नहीं रह जाता। एक बार एक सैनिक अफसर के घोड़े की नाल, एक कील न रहने के कारण, गिर पड़ी थी जिससे वह घोड़ा बेकाम हो गया था। घोड़े के बेकाम हो जाने के कारण, उस अफसर को शत्रुओं ने पकड़ लिया और मार डाला। उसके पीछे उसकी सेना भी नष्ट हो गई। यह सब एक कील के अभाव का परिणाम था।

बहुत से लोग छोटी बातों की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते। यही लापरवाही बहुतों की जायदाद चौपट करती है, जहाजों को डुबा देती है, मकानों में आग लगा देती है और अनेक प्रकार के अनिष्ट करके मनुष्यों की हानि करती है। जो मनुष्य लापरवाह हो जाता है उसके सुधरने या सँभलने की कोई आशा न रखनी चाहिए। आपको अनेक ऐसे उदाहरण मिलेंगे जिनमें एक छोटी सी चीज के अभाव के कारण बहुत बड़ी हानि हो जाती है। जब छोटी चीजों की ओर ध्यान न दिया जाय तो विनाश कुछ दूर नहीं रह जाता। उद्योगी मनुष्य ही धनवान् होता है; और वास्तव में उद्योगी वही

है जो छोटी-बड़ी सब बातों का पूरा ध्यान रखता है। कोई चीज चाहे देखने में कितनी ही छोटी और तुच्छ क्यों न दिखलाई पड़े पर उसकी ओर ध्यान देना उतना ही आवश्यक है जितना बड़ी-बड़ी बातों की ओर।

एक पैसा कोई बड़ी चीज नहीं है। उससे कोई बहुत बड़ा काम नहीं हो सकता; पर दियासलाई की दो डिबियाँ उससे भी खरीदी जा सकती हैं, वह किसी दीन या भिखमंगे को माँगने पर दिया जा सकता है। लेकिन बहुत से आदमियों का सुख उसी पैसे के सदुपयोग पर निर्भर रहता है। मनुष्य चाहे अधिक परिश्रम करके कुछ विशेष धन उपार्जन कर ले पर यदि वह अपने पैसों का ध्यान न रखे और उन्हें भाँग, पान या और चीजों के लिये खर्च कर दे तो उसकी दशा बोझ ढोने या उसे घसीटनेवाले पशु से अच्छी नहीं हो सकती। पर यदि वह उन पैसों का ध्यान रखे और अपनी आय का कुछ अंश बचाकर किसी बंक या बीमा-कंपनी में जमा करता जाय तो वह शीघ्र ही सुखी हो जाता है, उसकी आय बढ़ जाती है और उसे भविष्य की कोई चिंता नहीं रह जाती।

बूँद-बूँद करके तालाब भरता है। एक-एक पैसा जोड़ने से रुपया होता है। एक पैसा बचाना मानों एक रुपया जमा करने का बीज बोना है। रुपया जमा करने से मनुष्य सुखी, संपन्न और स्वतंत्र होता है। लेकिन उचित और न्यायपूर्ण उपाय से धन उपार्जित करना चाहिए। जो मनुष्य पैसा-रुपया

बचाना नहीं जानता उसे सदा कोल्हू के बैल की तरह काम में जुता रहना पड़ता है। उस पर शीघ्र ही विपत्ति आ सकती है। पर जो मनुष्य सावधानता से अपनी कमाई बचा रखता है वह निश्चिंत और साहसी बना रहता है। जिस मनुष्य को एक बार कुछ बचाने का सुख मिल जाता है तो फिर उसे सदा के लिये उसका अभ्यास हो जाता है। जिसके पास कुछ धन जमा होता है उसे बीमारी या वृद्धावस्था की कोई चिंता नहीं रह जाती। जो मनुष्य कुछ बचा लेता है वह दूसरों का आश्रित नहीं होता और जो नहीं बचा सकता है वह सदा दरिद्रावस्था में कष्ट भोगा करता है।

एक बात और है। पुरुष यदि चाहे कि मितव्यय करके कुछ धन संग्रह करे तो भी, जब तक उसकी स्त्री उसे इस काम में पूरी सहायता न दे, उसे यथेष्ट सफलता नहीं हो सकती। मितव्यय और युक्तिपूर्वक चलनेवाली स्त्री से ही घर की शोभा होती है। वह अपने पति को सभी सत्कार्यों में सहायता देती है और मीठी बातों से उसे उत्साहित करके उसके अनेक गुणों का विकास कराती है। स्वयं आदर्श बनकर वह अपने पति के हृदय में सद्गुणों का बीज बोती है और उसे महानुभाव बनाती है। उदाहरण के लिये आप गोस्वामी तुलसीदास और कविकुलशिरोमणि कालिदास को ले सकते हैं। इन लोगों की योग्यता और बुद्धि का विकास स्त्री के कारण ही हुआ था। नाटौर के राजा रामकांत को दोबारा

राज्य मिलने पर उनकी स्त्री रानी भवानी ने ही समस्त राज-कार्य सँभाले थे; और अपने पति को कुमार्ग में आने से बचाया था।

अपने जीवन को अच्छे कामों में व्यतीत करना और उसे आदर्श बनाना दूसरों को सैकड़ों उपदेश देने से बहुत बढ़कर है। केवल शब्दों से कहीं बढ़कर एक उदाहरण का प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की सामाजिक या नैतिक स्थिति जानने का सबसे अच्छा साधन उसका दैनिक जीवन-क्रम है। उदाहरण के लिये आप दो ऐसे आदमियों को लीजिए जिनका काम-धंधा, आमदनी आदि सब कुछ समान हो। उन दोनों के जीवन-क्रम में आपको आकाश-पाताल का अंतर मिलेगा। उनमें से एक व्यक्ति आपको स्वतंत्र और प्रसन्न-चित्त दिखलाई देगा और दूसरा परतंत्र और दुखी मालूम होगा। एक के पास छोटा पर साफ-सुथरा मकान होगा और दूसरे के पास टूटी हुई झोपड़ी। एक के वस्त्र बढ़िया और नए होंगे और दूसरे के फटे और पुराने। एक के लड़के आपको प्रसन्न-चित्त, साफ कपड़े पहने और किसी पाठशाला में जाते हुए मिलेंगे और दूसरे के लड़के गंदे और फटे कपड़े पहने और गलियों में इधर-उधर घूमते हुए मिलेंगे। एक को मनुष्य-जीवन के सब प्रकार के सुख मिलेंगे और दूसरे को उनमें से एक भी नहीं। पर तो भी उन दोनों की आय और परिवार समान ही है। इस आकाश-पाताल के अंतर का क्या कारण है?

इसका कारण केवल यही है कि उनमें से एक व्यक्ति समझदार है और आगा-पीछा सोचकर चलता है पर दूसरा इसके बिलकुल विपरीत है। एक अपनी स्त्री, बच्चों और गृहस्थी का ध्यान रखकर अपने क्षणिक और मिथ्या सुखों का त्याग करता है और दूसरा केवल अपनी वासनाओं को पूरा करता है तथा बुरी आदतों में फँसा रहता है। एक किसी प्रकार का नशा नहीं खाता और सदा अपने गार्हस्थ्य सुख को बढ़ाने का उद्योग करता रहता है और दूसरा अपने घर और गृहस्थी का कुछ भी ध्यान नहीं करता और अपनी आय का अधिकांश शराब, ताड़ी या भाँग पीने और दूसरे दुर्व्यसनों में गँवा देता है। एक की दृष्टि उन्नति की ओर होती है और दूसरे की अवनति की ओर। एक का सुख ऊँची श्रेणी का होता है और दूसरे का नीची श्रेणी का। एक पुस्तकें पढ़ना और अच्छे लोगों के साथ रहना पसंद करता है और दूसरा दुर्व्यसनों में फँसना और छोटे आदमियों के साथ रहना; एक सुख की ओर बढ़ता है और दूसरा दुःख की ओर; एक धन संग्रह करता है और दूसरा उसे गँवाता है।

यह बात भली भाँति सिद्ध है कि किसी गृहस्थी का कल्याण या सुख गृहिणी पर बहुत अधिक निर्भर है। जब तक स्त्री की इच्छा या सहायता न हो तब तक कोई किफायती या सुखी नहीं हो सकता। विशेषतः किसी श्रमजीवी की स्त्री में इस प्रकार के सद्गुणों की बहुत आवश्यकता है क्योंकि

उसके पति की आय परिमित होती है और गृहस्थी का सब कारबार उसी को करना पड़ता है। जो स्त्री किफायत करना नहीं जानती उसके हाथ में रुपया-पैसा देना मानों चलनी में पानी डालना है, पर जो स्त्री किफायत करती है वह अपनी गृहस्थी को स्वर्ग बना लेती है। चाहे वह अधिक संपत्ति या धन न जोड़ सके पर तो भी वह अपने पति और दूसरे कुटुंबियों का जीवन सुखपूर्ण बना देती है।

यह बात बड़ी कठिनता से किसी के ध्यान में आवेगी कि एक आना रोज जोड़ने से भी अच्छी रकम खड़ी हो सकती है। पर विचारने से यह बात भली भाँति मालूम हो जायगी कि यदि मनुष्य प्रतिदिन एक आना भी जमा किया करे तो कुछ समय में वह इतना धन अवश्य संग्रह कर सकता है जो उसे और उसके परिवार को दरिद्रता और अकाल से बचा ले। यदि मनुष्य बीस वर्ष की अवस्था से एक आना रोज जमा करने लगे तो पैंतालीस वर्ष की अवस्था में उसके पास लगभग छः सौ रुपए नगद हो सकते हैं। यदि किसी के घर लड़का हो और वह उसी दिन से उसके लिये एक आना नित्य जमा करने लगे तो लड़के के बालिग होने तक वह पाँच सौ रुपया जमा कर सकता है, जो उसके विवाह के लिये यथेष्ट हो सकता है। इन बातों से मालूम होता है कि एक आना प्रतिदिन में कितनी शक्ति है। पर उस ओर बहुत कम लोगों का ध्यान जाता है। एक बार आप किसी बंक में कुछ जमा कर

दीजिए और तब वह आप ही आप बढ़ने लगेगा और आपकी भी इच्छा होगी कि आप उसमें और अधिक जमा करें।

बंक में जमा करने की अपेक्षा किसी बीमा-कंपनी को वह धन देने से उसकी शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है। मान लीजिए कि आप दो हजार रुपए की अपनी जान का बीमा करावें, तो अपने चंदे की पहली किस्त देते ही आपका परिवार इस बात का अधिकारी हो जाता है कि आपकी मृत्यु के बाद वह तत्काल दो हजार रुपये ले ले। अपनी जान का बीमा कराना या अपने परिवार के लिये और किसी प्रकार धन संग्रह करना बड़े पुण्य और परोपकार का काम है। नैतिक और धार्म्मिक दृष्टि से मनुष्य का यह कृत्य बहुत ही योग्य और आवश्यक है। अपने और अपने परिवारवालों के लिये स्वतंत्रता संपादित करने का यह सबसे अच्छा मार्ग है। वास्तव में एक-एक पैसे पर ध्यान रखना और उसका सदुपयोग करना ही मनुष्य का सद्गुण है और इसी से उसकी दूरदर्शिता और प्रामाणिकता प्रकट होती है।

इँगलैंड में एक बहुत बड़े कारखाने के मालिक को सदा इस बात की चिंता रहती थी कि सब लोग, विशेषतः श्रमजीवी, कभी कष्ट में न पड़ें और जहाँ तक हो सके सुखपूर्वक अपना जीवन बितावें। उस मनुष्य ने पहले-पहल रेल चलाने के काम में बहुत बड़ी सहायता दी थी और स्वयं व्यापार करके असंख्य धन कमाया था। उसने अपने कारखाने और

आफिसों की दीवारों में बड़े-बड़े कागज और तख्ते लगवा दिए थे जिन पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा रहता था—"कभी निराश न हो।" "बिना परिश्रम के कुछ नहीं होता।" "जो अपनी सारी कमाई खर्च कर देता है वह भीख माँगता है।" "खोया हुआ समय फिर हाथ नहीं आता।" "सदा परिश्रमी और किफायती बने रहो" आदि। इन वाक्यों को कारखाने में काम करनेवाले और रास्ता चलनेवाले लोग भली भाँति पढ़ा करते थे और उनमें से बहुत से लोग यथासंभव इन शिक्षाओं के अनुसार कार्य्य करते थे। इसके सिवा वह प्रायः छोटे-छोटे शिक्षापूर्ण विज्ञापन ऐसे स्थानों पर बँटवाया करता था जहाँ लोग अधिकता से एकत्र होते थे। उसके एक विज्ञापन का मर्म्म सुनिए—

"सब प्रकार के काम व्यवस्था पर निर्भर हैं, लेकिन बिना समय का ठीक ध्यान रखे 'व्यवस्था' हो ही नहीं सकती। समय का पूरा ध्यान रखना बहुत आवश्यक है क्योंकि उसके कारण गृहस्थी में शांति और शील का संचार होता है। जहाँ उसका ध्यान नहीं रखा जाता वहाँ कर्त्तव्य-पालन करना भी बहुत कठिन बल्कि असंभव हो जाता है। उससे दूसरा लाभ यह होता है कि मनुष्य का चित्त शांत और स्थिर रहता है। अव्यवस्थित मनुष्य को सदा जल्दी पड़ी रहती है। वह जब आपसे मिलेगा तब जल्दी के कारण पूरी बात भी न कर सकेगा और तुरंत दूसरी जगह चला जायगा। पर वहाँ भी

वह अधिक नहीं ठहर सकता क्योंकि उसके काम पर जाने का समय हो जाता है। 'व्यवस्था' से मनुष्य का चरित्र दृढ़ होता है और एक की देखा-देखी दूसरा भी उसका अनुकरण करने लगता है। जब मालिक व्यवस्थित होता है तब उसके नौकर भी वैसे ही हो जाते हैं। इस प्रकार इस सद्गुण की वृद्धि होने लगती है।"

इस प्रकार वह मनुष्य सदा अनेक रीतियों से लोगों को सदुपदेश दिया करता था जिसका परिणाम भी बहुत अच्छा होता था। उसके "सदुपदेश और सत्परामर्श" शीर्षक एक और विज्ञापन का सारांश यहाँ दिया जाता है—

"हमारे कारखानों का एक पुराना आदमी एक दिन कहता था कि उसने बहुत ही थोड़े वेतन पर यहाँ काम करना आरंभ किया था; लेकिन परिश्रम और किफायत के कारण उसने अच्छी संपत्ति बना ली है। उसका दृढ़ सिद्धांत था कि अपनी आय के तीन चतुर्थांश से कभी अधिक खर्च न करना चाहिए। यद्यपि रुपए में चार आना बहुत थोड़ा मालूम होता है पर सौ रुपए का चौथाई पचीस रुपया हो जाता है।

"यदि कोई युवक अपनी आय में से पाँच रुपए मासिक भी जमा करने लगे तो उसके पास वर्ष में छः सौ रुपए हो जायँगे। युवावस्था में ही किफायती बनने की बहुत बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि आयु अधिक होने पर उसके लिये यह कार्य्य बहुत ही कठिन हो जाता है।

"हमारे परिश्रमी और किफायती होने ही पर हमारा कल्याण अवलंबित है। इसके लिये विशेष बुद्धिमत्ता की नहीं बल्कि उसमें तुरंत लग जाने और उसे आरंभ कर देने की आवश्यकता होती है। उद्योग करने पर सब लोग प्रतिष्ठित और संपन्न बन सकते हैं। 'जो मनुष्य अपनी सहायता करता है, ईश्वर भी उसका सहायक बन जाता है।' जो मनुष्य काम-धंधा छोड़कर भोग-विलास में लग जाता है उसका कारबार शीघ्र नष्ट हो जाता है।

"तुच्छ बातों से लापरवाह होकर हम बड़ी हानि उठाते हैं। सबको अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिए और आज का काम कभी कल पर न छोड़ना चाहिए।

"यदि काम अधिक आ जाय तो उसमें अधिक समय लगाओ और अपने दूसरे कामों में गड़बड़ी न होने दो। जो मनुष्य अपने दूसरे कामों को नियमपूर्वक नहीं करता उसके कारण नियमपूर्वक काम करनेवाले दूसरे लोगों को कष्ट होता है।

"मनुष्य के लिये सत्यता से बढ़कर और कोई चीज नहीं है। झूठा आदमी अपने आपको घृणित समझता है। याद रखो कि मनुष्य बिना किसी से कहे ऐसे काम करता है जिसकी गणना झूठ में हो सकती है। जिस चीज का अंदर और बाहर एक समान न हो, वह अवश्य "झूठ" है। इस हिसाब से जो मनुष्य अपने स्वामी की हानि देखते हुए भी

उस पर किसी का ध्यान नहीं दिलाता अथवा उस हानि को नहीं रोकता वह भी दोषी है। इसकी गणना भी झूठ के ही अंतर्गत है।

"सदा और सब अवसरों पर निश्शंक होकर बात और काम करो। इससे भूलें कम होंगी और परिश्रम भी घट जायगा।

"किसी बड़े कार्य्य या सेवा करने का अवसर हमें बहुत ही कम मिलता है। छोटी-छोटी सेवाएँ हम सदा कर सकते हैं। इसलिये जब-जब अवसर मिले तब-तब एक दूसरे की सहायता करो; इससे तुम लोगों में सद्भाव और एकता का प्रचार होगा।"
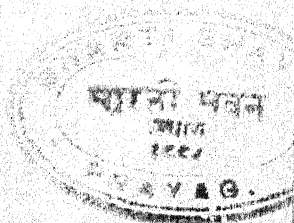
नवाँ प्रकरण

स्वामी और सेवक

यदि मालिक चाहे तो अपने कारखानों में काम करने-वालों अथवा दूसरे नौकरों को दूरदर्शी और मितव्ययी बना सकता है। मनुष्य मितव्ययी बन सकता है और विपत्तिकाल के लिये कुछ धन बचा सकता है, पर उसे सहायता और प्रोत्साहन की आवश्यकता होती है। मालिकों को अपने सेवकों पर बहुत कुछ अधिकार होता है। यदि वे लोग अपने अधिकार को भली भाँति समझकर अपने नौकरों के साथ सहानुभूति दिखलावें, जिसमें कि उनका कुछ खर्च नहीं होता, तो दोनों को अनेक लाभ होंगे। कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों को जिस दिन चिट्ठा मिलता है उस दिन यदि मालिक उन्हें सचेत और सावधान कर दे और शराब पीनेवाले मजदूरों के लिये कुछ हलका दंड नियत कर दे तो बहुत उपकार हो सकता है।

इसके सिवा मालिक उनके लाभ के लिये और भी अनेक कार्य कर सकते हैं। सेविंग बंक की भाँति वे अपने यहाँ भी उन लोगों की छोटी-छोटी रकमें जमा करने का प्रबंध कर सकते हैं और जो लोग स्वीकार करें उनके वेतन का कुछ

निश्चित अंश भी देते समय काट सकते हैं। समय-समय पर वे अनेक प्रकार से उन्हें धन के सदुपयोग के संबंध में अच्छे-अच्छे उपदेश दे सकते हैं। विलायत में जो कारखानेवाले इस प्रकार के उत्तम कार्य करते हैं, उनकी प्रतिष्ठा काम करनेवालों में बहुत बढ़ जाती है और वे अपने स्वामी पर अधिक विश्वास और भक्ति रखकर काम करते हैं।

मालिक और नौकरों में बड़ी भारी सहानुभूति की आवश्यकता है। यदि सच पूछिए तो छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सभी में सहानुभूति की बहुत आवश्यकता होती है। विशेषतः हमारे देश में, जहाँ अनेक मत-मतांतर और जातियाँ रहती हैं और जिनमें बहुत बड़े भेद हैं, उसकी आवश्यकता और भी अधिक है। यदि बड़े आदमी केवल गरीबों को दान देने लग जायँ तो उससे यह त्रुटि दूर नहीं हो सकती। गरीबों के साथ सहानुभूति दिखलाने की अपेक्षा खाली अनाज और कंबल बाँटने से काम नहीं चल सकता। हमारे देश में दान की सीमा अन्न, वस्त्र और धन तक ही है। हमारे यहाँ दान, भक्ति की प्रेरणा से अधिक और सहानुभूति की प्रेरणा से कुछ कम होता है। पर और देशों में सहानुभूति की मात्रा हमारे देश से भी कम है। हमारे यहाँ सहानुभूति की आवश्यकता भी अधिक है और उसका अस्तित्व भी अधिक है। सभ्य देशों में जो दान होता है वह प्रसिद्धि या ख्याति पाने के अभिप्राय से अधिक होता है और वास्तविक सहानुभूति

की प्रेरणा से कम। उन देशों के थोड़े से बड़े-बड़े दानियों को छोड़कर—जिन्होंने विद्या, विज्ञान और शिल्पकला के प्रचार के लिये असंख्य धन दिया है—शेष सब छोटे-छोटे दान सहानुभूति-रहित और प्रसिद्धि की इच्छा से होते हैं। धनवानों को निर्धनों की कोई परवाह नहीं होती और न वे उनके दुःखों से दुखी होते हैं।

सभ्य देशों में स्वामी और सेवकों में भी सहानुभूति का वैसा ही अभाव है। सबको केवल अपनी-अपनी चिंता रहती है; वहाँ तैरनेवाले कभी डूबनेवालों को बचाने का कष्ट नहीं उठाते। यदि एक के घर में आग लग जाय तो उसके बुझाने के लिये दूसरा व्यक्ति अपना काम नहीं छोड़ेगा। सब लोग यथाशक्ति केवल एक दूसरे से धन छीनने का उद्योग करते हैं। लेकिन जिस मनुष्य में कुछ वास्तविक सहानुभूति होती है उसमें वह इन दुर्गुणों से कभी दब नहीं सकती। उसके विचार सदा उच्च रहेंगे और उसे परोपकार का ही अधिक ध्यान रहेगा। केवल जो लोग बहुत अधम और नीच प्रकृति के होते हैं वे ही स्वार्थांध भी हो सकते हैं। इस स्वार्थपरता की वृद्धि का मुख्य कारण आजकल की नवीन सभ्यता की दूषित प्रणाली है। जिस देश में सभ्यता की मात्रा जितनी ही अधिक है वहाँ स्वार्थपरता का भी उतना ही राज्य है। इतिहास इस बात की साक्षी देता है कि भारतीय सभ्यता में स्वार्थपरता की कभी वृद्धि नहीं हुई; और ज्योंही हमारे देश में

स्वार्थ की ओर ध्यान जाने लगा त्योंही हमारा पतन भी आरंभ हो गया। हमारी अवनति का प्रधान कारण चाहे स्वार्थ न भी हो पर हमें उससे हानि बहुत कुछ पहुँची। नवीन सभ्यता के प्रचार के साथ ही साथ हमारे देश में भी उसी स्वार्थ की वृद्धि, किसी न किसी रूप में, होती जाती है।

ऐसे देशों में नौकर भी सदा इस बात की चेष्टा में लगे रहते हैं कि जहाँ तक हो सके उन्हें उनके परिश्रम के बदले में अधिक धन मिले। इस प्रकार स्वामी और सेवक में किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं होती; दोनों केवल अपने-अपने लाभ की ओर ध्यान रखते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि कभी-कभी दोनों को बड़ी हानि उठानी पड़ती है। पाठकों में से अधिकांश ने विलायत की बड़ी-बड़ी हड़तालों का हाल सुना होगा जिनमें बहुत बड़े-बड़े कारखाने महीनों बंद रहते हैं और जिनसे लाखों रुपए के काम की हानि होती है। कभी-कभी हड़तालों के कारण रेल, तार, डाक आदि को भी रुक जाना पड़ता है। यह सब सहानुभूति के अभाव का ही फल है। जब तक छोटे-बड़ों में परस्पर सहानुभूति न स्थापित होगी तब तक समाज और देश में कभी शांति न होगी।

कुछ लोगों का कथन है कि प्रतिद्वंद्विता के कारण ही लोगों में सहानुभूति नहीं होती। जो लोग प्रतिद्वंद्विता में लगते हैं, उन्हें विवश होकर अपने स्वार्थ को सर्वोपरि समझना पड़ता है। पर प्रतिद्वंद्विता की उपयोगिता भली भाँति सिद्ध हो चुकी

है, इसलिये उसका त्याग नहीं हो सकता। सब लोग हर काम में एक दूसरे से आगे बढ़ने की चेष्टा करते हैं और इसी चेष्टा पर जगत् की उन्नति बहुत कुछ अवलंबित है। यही प्रतिद्वंद्विता मनुष्य से धन, बल, विद्या, बुद्धि और प्रतिष्ठा संपादित कराती है और उन्हें उन्नत बनाती है। एक मनुष्य या जाति को संपन्न होते देख औरों को भी उसका अनुकरण करने की इच्छा होती है और वे उसके लिये उद्योग करते हैं।

यदि प्रतिद्वंद्विता बंद हो जाय तो जगत् की उन्नति रुक जायगी। प्रतिद्वंद्विता के कारण एक सुस्त आदमी भी कुछ न कुछ काम करने लग जाता है; क्योंकि यदि वह ऐसा न करे तो नष्ट हो जाय। जो लोग सुस्त या अकर्मण्य हों उन्हें संसार में अपना उचित अंश पाने के लिये परिश्रम और मितव्यय करना चाहिए। सब मनुष्यों का सांसारिक संपत्ति में उचित अंश है, पर उसके पाने के लिये उद्योग होना चाहिए। जो मनुष्य उद्योग या परिश्रम नहीं करता, उसे भोजन भी न करना चाहिए। जो लोग परिश्रम करके कठिनाइयों को दूर करते हैं वे ही सफलता भी प्राप्त करते हैं। यदि मार्ग में कठिनाइयाँ न होतीं, यदि लोग प्रतिद्वंद्विता न करते तो उन्हें किसी प्रकार की फलप्राप्ति भी न होती। इन सब कारणों से मनुष्य को परिश्रम करना ही पड़ता है। यही परिश्रम की आवश्यकता समाज और जाति की उन्नति का कारण है। इसी ने बहुत लोगों से बड़े-बड़े आविष्कार कराए

हैं और बहुतेरी नई बातों का प्रकाश कराया है। कारीगरों, व्यापारियों, वैज्ञानिकों और विद्वानों को उसी ने उत्साहित किया है। सब प्रकार की शिल्प-कला का परिचालन उसी के द्वारा हुआ है। संसार के सारे देशों की सभ्यता और संपन्नता का मुख्य कारण वही है। प्रत्येक मनुष्य की शक्ति और बल बढ़ाने के लिये वह परम आवश्यक है। उसका बीज मनुष्य के हृदय में इसी लिये बोया गया है कि वह किसी वस्तु का अन्वेषण करके उसका कुछ परिणाम निकाले और अपनी वर्तमान दशा से कुछ उन्नत हो।

मनुष्य में केवल प्रतिस्पर्धा ही नहीं है; बल्कि उसमें और भी अनेक गुण हैं और यह उनमें से एक है। उसमें इससे उत्तमतर और भी अनेक गुण हैं। ज्ञान, सहानुभूति, महत्त्वाकांक्षा आदि और भी कई ऐसी बातें हैं जो मनुष्य को, जगत् के उपकार के विचार से, एक दूसरे से मिलकर कार्य करने के लिये उत्साहित करती हैं। बहुत से लोग परिश्रम करके कोई वस्तु उत्पन्न करने में मिलकर लग जाते हैं और उससे जो लाभ होता है उसे वे लोग परस्पर बाँट लेते हैं। लेकिन इस काम में उन्हें प्रतियोगिता करने की बड़ी जरूरत होती है।

परिश्रम और मितव्यय का एक परिणाम धन संग्रह भी है। मनुष्य के भूतकाल के परिश्रम, और दूरदर्शिता का चिह्न उसकी पूँजी ही है। सदा से खूब परिश्रम करनेवाले

लोग ही अधिक धन संग्रह करते आए हैं। ऐसे ही लोग बड़े-बड़े कारबार करते और सैकड़ों-हज़ारों मनुष्यों का पालन करते हैं। उन्हें संसार का बड़ा भारी उपकारक समझना चाहिए; क्योंकि जाति या देश की संपन्नता और शक्ति बढ़ाने में उनसे बहुत बड़ी सहायता मिलती है। यदि लगातार कई पीढ़ियों तक मितव्यय करके धन संग्रह न किया जाता तो आज कारीगरों और मजदूरों की दशा बहुत ही बुरी होती। किसी कारखाने का मालिक किसी को नौकर नहीं रखता है बल्कि उसका धन लोगों से काम लेता है।

प्रत्येक देश की उन्नति उसके निवासियों के परिश्रम और उद्योग पर निर्भर रहती है। हमारे देश की वर्तमान गिरी हुई दशा का एक कारण परिश्रम और उद्योग का अभाव भी है। भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है; पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि यहाँ के निवासी खेती-बारी के सिवा और कोई काम ही न करें। यहाँ सब प्रकार की शिल्प-कला के प्रचार आदि के लिये बहुत अच्छा सुयोग है पर अपने सुस्त और अकर्म्मण्य होने के कारण हम दरिद्रता के गहरे गड्ढे में पड़े हुए हैं। हमारा परवश और पराधीन होना हमें उन्नति करने से उतना नहीं रोकता जितनी हमारी अकर्म्मण्यता हमें रोकती है। संसार के सभी देशों ने परिश्रम और उद्योग करके ही उन्नति की है। यदि इँगलैंड केवल कृषि-कर्म्म पर ही संतोष करता और बड़े-बड़े व्यापार और आविष्कार न

करता तो आज उसकी इतनी प्रधानता न होती। संसार की वर्तमान गति को देखते हुए कहना पड़ता है कि यदि हम शिल्प-कला और उद्योग आदि में उन्नति न करेंगे तो हमारे विनाश में अधिक समय न लगेगा। अन्य देशों में परिश्रम और उद्योग करके लोग जो धन संग्रह करते हैं उसे वे बड़े-बड़े कारखाने खोलकर शिल्प-कला की उन्नति और वृद्धि में लगा देते हैं। पर हमारे देश की दशा इससे बहुत ही भिन्न है। यहाँ लोग संचित धन का सदुपयोग करना नहीं जानते। पर जिन लोगों ने अपने धन का सदुपयोग करके उसे किसी बड़े व्यापार या कारबार में लगाया है, उन्हें लाभ भी यथेष्ट हुआ है।

जो लोग उचित रीति पर पूरा परिश्रम करते हैं, वे व्यापार में थोड़ी पूँजी लगाकर भी अच्छे धनवान् बन जाते हैं। ऐसे मनुष्य शायद ही कहीं निकलेंगे जिन्होंने खूब परि-श्रम और ईमानदारी से कोई काम किया हो और फिर भी दरिद्र ही बने रहे हों। जो मनुष्य वास्तव में योग्य होता है वही धन भी संग्रह कर लेता है। अधिक लाभ होने से कम लोग धनी होते हैं पर अधिक परिश्रमी और मितव्ययी होने से बहुत से लोग धनवान् हो जाते हैं। यदि हम मितव्ययी और परिश्रमी न हों तो हमारे अधिक लाभ का कोई अच्छा और संतोषजनक फल नहीं होता और हमारी सारी आय हमारे हाथ से निकल जाती है। पर यदि हम मेहनत और किफा-

यत करें तो हमारी थोड़ी आय भी हमें अच्छा लाभ पहुँचा सकती है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि बहुत परिश्रमी और सच्चे आदमी को भी सफलता नहीं होती। उसके मार्ग में अनेक बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ आ पड़ती हैं जो उसे आगे बढ़ने से रोकती हैं। जो मनुष्य एक या दो-चार कठिनाइयाँ देखकर रुक जाता और अपना काम छोड़ देता है, उसे किसी प्रकार सफलता नहीं हो सकती। पर जो व्यक्ति कठिनाइयों की कुछ भी परवाह न करके उन्हें दूर करता हुआ अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर होता जाता है वही सफलमनोरथ होता है। एक ही काम में दो आदमी लगते हैं। उनमें से एक तो उसमें अनेक कठिनाइयाँ देखकर उसे अधूरा ही छोड़ देता है और दूसरा विघ्न-बाधाओं की कुछ भी परवाह न करके उसमें लगा रहता है। ऐसी दशा में निश्चय है कि लगातार परिश्रम करनेवाले को ही सफलता हो सकती है, दूसरे को नहीं। इसका कारण यही है कि एक मनुष्य अपने मार्ग के जिन विघ्नों को भारी पत्थर समझकर छोड़ देता है, दूसरा उसी से सीढ़ी का काम लेता है और उन्नति के शिखर पर चढ़कर अपना उद्देश्य सिद्ध कर लेता है।

महान् पुरुष सदा बहुत विचारपूर्वक धन का संग्रह और व्यय करते हैं। एक विद्वान् का कथन है कि सिकंदर की शक्ति और संपन्नता का मुख्य कारण उसकी प्रबल विचारशक्ति,

दूसरा कारण उसकी मितव्ययिता और तीसरा कारण बड़े-बड़े उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उसकी उदारता थी। उसका निज का व्यय बहुत कम था, पर सार्वजनिक कामों में वह सदा बहुत उदारता दिखलाया करता था। नेपोलियन भी बड़ा मितव्ययी था। युद्ध के सिवा वह और किसी अवसर पर अधिक धन व्यय न होने देता था। ऐसे लोगों में मितव्ययता के साथ-साथ उदारता भी रहती है। बड़े-बड़े व्यापारियों के लिये भी इस आदर्श पर चलना कोई कठिन काम नहीं है। हाँ, उसमें दूरदर्शिता, विचार-शक्ति और साहस की बहुत आवश्यकता होती है।

विलायत में यह नियम है कि बड़े-बड़े कारखानों में काम करनेवाले नौकरों को भी लाभ का कुछ अंश दिया जाता है। इससे लाभ यह होता है कि काम करनेवाले अपने स्वामी और कारखाने की उन्नति से संतुष्ट होते हैं और स्वयं उसे उन्नत बनाने का यत्न करते हैं। हमारे देश में भी कहीं-कहीं यह प्रथा पाई जाती है। बड़ी-बड़ी कोठियों में, जहाँ लाखों रुपए वार्षिक का व्यापार होता है, प्रधान मुनीबों तथा अन्य कर्म्मचारियों को मालिकों की ओर से लाभ का कुछ निश्चित अंश दिया जाता है। इस प्रथा से स्वामी और सेवक में परस्पर सुहृद्भाव स्थापित होता है। विलायत में तो यह प्रथा यहाँ तक बढ़ गई है कि कारखानों में काम करनेवाले लोग अपनी आय और लाभ का अंश जमा करके कुछ समय के उपरांत

उस कारखाने के हिस्से खरीद लेते हैं और उसके एक अच्छे अंश के भागी बन जाते हैं, यहाँ तक कि कई कारखाने मालिकों के एकांत अधिकार में से निकलकर ज्वाइंट स्टाक कंपनी के स्वरूप में परिणत हो गए हैं और लिमिटेड कंपनी की भाँति उसमें सभी छोटे-बड़े योग देते हैं। इससे यह न समझना चाहिए कि कारखाने हाथ से निकल जाने के कारण मालिकों की हानि होती है। नहीं, वे लोग भी अपने लगाए हुए मूल-धन के भागी बने रहते और उससे सदा यथेष्ट लाभ उठाते हैं। कहीं-कहीं तो मालिकों के लाभ के साथ-साथ अनेक प्रकार की सुविधाएँ भी बढ़ जाती हैं।

दसवाँ प्रकरण

सामर्थ्य से बाहर खर्च करना

आजकल की सभ्यता में दिन पर दिन अपव्यय करने का दोष बढ़ता जाता है। केवल बड़े-बड़े रईस और धनवान् ही अपव्ययी नहीं होते बल्कि मध्यम और अंतिम श्रेणी के लोग भी खर्च करने में बड़ी उदारता दिखलाते हैं। इसका कारण यही है कि लोग अपनी वास्तविक दशा को छिपाते और लोगों को अपनी झूठी संपन्नता दिखलाने के लिये ऊपरी तड़क-भड़क अधिक रखते हैं। इसी अनुचित इच्छा की प्रबलता लोगों से बहुत अपव्यय कराती है और अंत में उन्हें बिलकुल दरिद्र बनाकर छोड़ती है। जब लोग अपनी आय से अधिक व्यय करने लगते हैं तब उन्हें लोगों से उधार लेना पड़ता है; और पीछे भार उतारने के लिये वे चाहते हैं कि उन्हें बिना परिश्रम कहीं से बहुत सा धन मिल जाय। उचित उपाय और परिश्रम से कमाया हुआ धन उनके लिये यथेष्ट नहीं होता और वे चाहते हैं कि जूआ खेलकर, जाल बनाकर अथवा दूसरों को किसी प्रकार धोखा देकर बहुत सा धन संग्रह कर लें।

धन का अपव्यय करनेवाले लोग आपको सब स्थानों पर अधिकता से मिलेंगे। शहर में रहनेवाले लोगों में तो यह

दोष कदाचित् चरम सीमा तक पहुँच जाता है। सभी गलियों, बाजारों और दूसरे स्थानों में आपको अनेक अप-व्ययी मिलेंगे। उनके और चिह्नों को जाने दीजिए, खाली कपड़ों से आप उन्हें पहचान लेंगे। इसके सिवा और सब प्रकार के छोटे-बड़े कामों में उनका खर्च बहुत अधिक होगा। बात यह है कि लोग अपनी आय से खर्च कहीं अधिक बढ़ा लेते हैं और उसका परिणाम यह होता है कि बहुत से लोग दिवालिए बन जाते हैं और बहुतेरे दूसरों के कर्जदार बने रहते हैं। दीवानी और फौजदारी अदालतों में नित्य ऐसे मुकद्दमे पहुँचा करते हैं जिनमें अभियुक्तों ने अपना बढ़ा हुआ खर्च चलाने के लिये या तो दूसरों से ऋण लिया हो या किसी प्रकार का जाल-फरेब किया हो।

बिना किसी प्रकार के हानि-लाभ का विचार किए लोग सदा इस बात की चेष्टा किया करते हैं कि वे देखने में संपन्न और धनवान् मालूम हों। जो लोग स्वयं जान-बूझकर यह बुरा अभ्यास डालना चाहते हों, वे उससे किसी प्रकार नहीं बच सकते। लोग चाहते हों कि वे बढ़िया और बहुमूल्य कपड़े पहनें, अच्छे और सजे हुए मकानों में रहें, बढ़िया भोजन करें और उनका ठाठ-बाट सदा बना रहे। पर इस ठाठ-बाट को निबाहने के लिये या तो उन्हें ऋण लेना पड़ता है या और किसी प्रकार की बेईमानी करनी पड़ती है। वाजिद-अली शाह और आसफ़ुद्दौला की उदारता और अपव्ययिता

का हाल सुनकर लोग चकित हो जाते हैं। पर यदि वे ध्यान से देखें तो उन्हें आसपास ही बहुत से वाजिदअली और आसफ़ुद्दौला दिखलाई देंगे।

इसके बाद दूसरा नंबर उन लोगों का है जो बहुत अधिक अपव्ययी तो नहीं होते पर कुछ न कुछ अपव्यय अवश्य करते हैं। उनका व्यय प्रायः उनकी आय के बराबर ही होता है और कभी-कभी विशेष अवसरों पर कुछ बढ़ भी जाता है। उनकी सदा यही इच्छा रहती है कि लोग उन्हें भला आदमी और प्रतिष्ठित समझें। वे दूसरों का अनुकरण करके ही अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने का उद्योग करते हैं। वे कभी इस बात का ध्यान नहीं करते कि अपनी आय से अधिक खर्च करने की शक्ति उनमें है या नहीं। ऐसे लोग कभी-कभी आत्ममर्यादा भी खो बैठते हैं। वे अपने बढ़िया कपड़ों और अपव्यय को ही प्रतिष्ठा का चिह्न समझते हैं। संसार की दृष्टि में वे ठाठदार बने रहते हैं—अब चाहे उनका यह ठाठ बिलकुल दिखौआ और झूठा ही क्यों न हो।

उनकी इच्छा सदा यही रहती है कि चाहे जो हो, लोग उन्हें दरिद्र न समझें। अपनी दरिद्रता छिपाने के लिये वे कोई बात उठा नहीं रखते। वे रुपया हाथ में आने से पहले ही खर्च कर देते हैं और बनिये, हलवाई और बजाज के सदा देनदार बने रहते हैं। बनियों और दूसरे दूकानदारों से उधार लेकर वे अपने शौकीन मित्रों को भोज देते और अनेक प्रकार

से उनका आदर-सत्कार करते हैं। पर जब दुर्दशा के दिन आते हैं और वे सिर से पैर तक ऋण में लद जाते हैं तब उनके मित्र उन्हें उसी प्रकार विपत्ति में छोड़कर हवा हो जाते हैं।

लेकिन जो लोग अपने मित्रों से इस प्रकार का व्यवहार नहीं रखना चाहते वे बहुत कुछ दरिद्रता से बचे भी रहते हैं। ऐसे मित्र जो केवल सुख के साथी हों, मनुष्य के किसी काम के नहीं होते। हाँ, उनके व्यवहारों और कार्यों से इतना पता अवश्य चल जाता है कि मनुष्य की प्रकृति कहाँ तक नीच हो सकती है। बहुत से मित्रों से मेल-मिलाप रखने से न तो मनुष्य की सामाजिक मर्यादा बढ़ सकती है, न व्यापार में उन्नति होती है, और न किसी और ही प्रकार का लाभ होता है, ये सब बातें वास्तव में मनुष्य के चरित्र-गठन पर निर्भर हैं; और जब तक मनुष्य अपना व्यवहार और चरित्र शुद्ध न कर ले तब तक उसे सफल और उन्नत होने की चेष्टा न करनी चाहिए, नहीं तो उसे मुँह के बल गिरने के सिवा और कोई लाभ न होगा। हम लोग सदा यही सोचते हैं कि यदि हम अमुक कार्य न करेंगे तो लोग क्या कहेंगे और हम इसी चिंता में बहुत से लाभदायक कार्य भी छोड़ बैठेंगे।

साधारणतः हम लोग सदा आपस में एक दूसरे के रहन-सहन, व्यवहार और कामों के संबंध में ही बातें किया करते हैं। हम सदा वर्तमान परिपाटी और प्रणाली के दास बने रहते हैं और आगे-पीछे का ध्यान न रखकर नीचे की ओर

गिरते जाते हैं। हम जब औरों को बढ़िया कपड़े पहने, सैर-तमाशे में जाते और अनेक प्रकार का अपव्यय करते देखते हैं तब हमें उनका अनुकरण करना अपने लिये आवश्यक मालूम होता है। वास्तव में हम दूसरों की दृष्टि से देखते और दूसरों के विचारों से काम लेते हैं। सब कामों में हम दूसरों का साथ देना चाहते हैं, और हमारी अज्ञता और दुर्बलता हमें सबका साथ छोड़ने से रोकती है। इसी लिये हम न तो अपने लिये कोई स्वतंत्र विचार कर सकते हैं और न स्वतंत्र कार्य। सब लोगों के अनुकूल रहने की इच्छा हमें दबाए रहती है और हम उनका अनुकरण करते हैं। हम स्वतंत्र विचार और कार्य करने से हिचकते और डरते हैं। हम अपनी बुद्धि और ज्ञान के अनुसार चलना या आत्मिक उन्नति करना नहीं चाहते। हम सदा दूसरों के पीछे चलना ही पसंद करते हैं, अपने लिये कोई नया रास्ता बनाना नहीं चाहते।

संसार के सब कार्यों में हमारी यही दशा बनी रहती है। जिस ओर हमारा समाज हमें चलाता है, उसी ओर हम चलते हैं; प्रत्येक मनुष्य अपनी श्रेणी के दूसरे लोगों के समान बना रहता है। प्रथा पर हमारी व्यर्थ की श्रद्धा और भक्ति रहती है। औरों को हम जैसे कपड़े पहनते देखते हैं, हम भी वही कपड़े पहनते हैं; औरों को हम जो कुछ खाते देखते हैं वही हम खाते हैं; और औरों को जो कुछ हम करते देखते हैं, वही हम करते हैं। जब तक हम इसका पालन करते

हैं तभी तक हम, जातीय विचार के अनुसार "प्रतिष्ठित" रहते हैं; और जब हम उसके अनुसार कार्य करना छोड़ देते हैं तब हमें समाज "प्रतिष्ठित" नहीं समझता। इस प्रकार बहुत से लोग जान-बूझकर दरिद्रता के मुँह में जा गिरते हैं, क्योंकि वे 'संसार' का मूर्खतापूर्ण भय नहीं छोड़ सकते; और सौ में नब्बे आदमी, जो इस प्रकार की मूर्खता का विरोध नहीं करते, बुद्धिमान् और दूरदर्शी नहीं हैं, बल्कि प्रायः मूर्ख, अयोग्य और आगा-पीछा न सोचनेवाले ही हैं।

बहुत से लोग अप्राप्त वस्तुओं को पाने और अप्राप्त स्थिति तक पहुँचने के लिये आकुल रहते हैं। यही आकुलता अनेक अनीतियों और दुराचारों का कारण है। यह सिद्धांत बहुत दृढ़ है और बड़े अनुभव के उपरांत निश्चय किया गया है। ऊपरी तड़क-भड़क बनाए रखना वर्तमान काल की बहुत बड़ी सामाजिक कुरीति है। मध्यम श्रेणी के लोग साधारणतः इसी बात की बहुत अधिक चेष्टा करते हैं कि दूसरे उन्हें वास्तव से अधिक योग्य समझें। इसी लिये वे ऊपरी तड़क-भड़क बनाए रहते हैं। "प्रतिष्ठित" बने रहना ही लोगों का मुख्य उद्देश्य होता है। वास्तविक "प्रतिष्ठा" अवश्य ही वांछनीय होनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अपनी वास्तविक योग्यता का ध्यान रखते हुए उचित प्रतिष्ठा पाने का उद्योग करे तो यह कोई अन्याय नहीं है। पर आजकल की "प्रतिष्ठा" वैसी नहीं होती; वर्तमान प्रतिष्ठा केवल ऊपरी और दिखौआ

बातों में होती है। अच्छे और बहुमूल्य कपड़े पहनना, खूब सजे हुए मकानों में रहना और उदारतापूर्वक खर्च करना ही आजकल की प्रतिष्ठा का चिह्न है। ठाठ-बाट से रहना और जेब में रुपए खड़खड़ाना ही आजकल की सभ्यता है। अब प्रतिष्ठित बनने के लिये सच्चरित्र और योग्य होने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। जिस योग्यता के कारण लोग अब प्रतिष्ठित समझे जाते हैं, उसी योग्यता के कारण वे तुच्छ और नीच भी समझे जा सकते हैं।

धन और स्थिति का वास्तविक और आवश्यकता से अधिक मूल्य समझने के कारण ही लोगों में यह अनुचित और अनीतिपूर्ण प्रथा फैलती है। सब लोग उच्च श्रेणी और स्थिति तक पहुँचने की चेष्टा करते हैं। लेकिन इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए कि मनुष्य की सामाजिक स्थिति चाहे कितनी ही गिरी हुई क्यों न हो, वह कुछ न कुछ लोगों से अवश्य ऊँचा रहता है। मध्यम श्रेणी के लोग इस उच्चता और नीचता का बहुत ध्यान रखते हैं। एक श्रेणी के लोग अपने से छोटी श्रेणी के लोगों से मेल-जोल रखने में अपनी अप्रतिष्ठा समझते हैं। गाँव और देहातों में आपको ब्राह्मणों, क्षत्रियों, कहारों, अहीरों और चमारों के रहने के लिये अलग-अलग टोलियाँ मिलेंगी। यही नहीं बल्कि उच्च श्रेणी के लोग, नीची श्रेणी के लोगों से अनुचित व्यवहार करते हैं। दूसरे देशों में जिन स्थानों पर यह दशा होती है, वहाँ छोटी श्रेणी के लोग अपने से बड़ी

श्रेणी के लोगों से आगे बढ़ जाने की चेष्टा करते हैं। पर हमारे यहाँ सामाजिक बंधन की दृढ़ता बहुत अधिक है इसलिये इस देश में एक दूसरे से बढ़ने की उतनी चेष्टा नहीं होती।

सब लोग सदा समाज में प्रतिष्ठित और अग्रसर बने रहने के अनेक उपाय करते हैं। इसके लिये हमें या तो धनी होने की आवश्यकता होती है और या धनी दिखाई पड़ने की। अर्थात् हम अपने से हीन दशावालों की ओर देखकर संतोष नहीं करते बल्कि धनी और उच्च श्रेणी के लोगों को अपना आदर्श मानते हैं। फल यह होता है कि हमारी उन्नत होने की शक्ति नष्ट हो जाती है और हम नीचे की ओर गहरे गड्ढे में गिरने लगते हैं। ऊपरी तड़क-भड़क बनाए रखने की चेष्टा ही अनेक प्रकार की अनीतियों की जड़ है। जिसे यह धुन लग जाती है वह उसके पूरा करने के लिये बहुत कुछ हानि सहता है। जब हम किसी दूसरे को अच्छे कपड़े पहने और गाड़ी पर सवार होकर कहीं जाते देखते हैं तो साधारण कपड़े पहनने और पैदल चलने में हमें लज्जा मालूम होने लगती है। हम भी उसी का अनुकरण करने लग जाते हैं जिसके लिये हमें प्रायः अनेक अनुचित और अन्यायपूर्ण कार्य करने पड़ते हैं। यह झूठी और थोथी प्रतिष्ठा पाने की मूर्खता उल्टे हमें और भी गिरा देती है।

सब लोग ऐसे अनेक मनुष्यों को जानते होंगे, जिन्होंने अनेक प्रकार के अपव्यय में फँसकर अपना बहुत सा धन नष्ट

कर दिया और समाज में झूठी प्रतिष्ठा पाने के उद्योग में दिवालिए बनकर अपनी दशा बहुत ही बुरी बना ली। ऐसे प्रतिष्ठित दिवालिए अंत में अपने ऋण के रुपए में दो पैसा चुकाने में भी असमर्थ हो जाते हैं। नौकरी करनेवालों के सदा दरिद्र बने रहने और व्यापारियों के बड़े-बड़े घाटे सहने और दिवाले निकालने का मुख्य कारण यही है कि वे लोग सदा अपनी ऊपरी तड़क-भड़क बनाए रखने की चेष्टा करते हैं।

दिखौआ और झूठी प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये हम अपना सारा सुख, सद्‌गुण, सत्यता, स्वतंत्रता आदि खो बैठते हैं। हम सदा संसार को धोखा देने की चेष्टा करते हैं और उसे अपनी वास्तविक दशा से अवगत करना नहीं चाहते। हम सदा इसी बात का उद्योग करते हैं कि लोग हमारी प्रशंसा किया करें या कम से कम हमारे संबंध में उनके विचार अच्छे रहें; और इसी के लिये हम अपनी स्वतंत्रता नष्ट कर देते और अनेक प्रकार के कष्ट उठाते हैं। हमारे देश की अपेक्षा सभ्य देशों में यह रोग बड़े भयंकर रूप में वर्त्तमान है। वहाँ लोग इसके लिये आत्म-हत्या करके अपने प्राण तक समर्पण कर देते हैं! ऊपरी तड़क-भड़क छोड़कर अपना जीवन निर्वाह करने की अपेक्षा वे लोग अपना अस्तित्व मिटा देना ही अधिक उत्तम समझते हैं। पेट भरने की चिंता के कारण बहुत ही कम लोग अपने प्राण देते हैं पर गाड़ी, घोड़े या बढ़िया कपड़े की चिंता के कारण बहुत से लोग आत्म-हत्या कर बैठते हैं।

इस काम में घर की स्त्रियाँ भी पुरुषों की अपेक्षा कुछ कम नहीं होतीं। अनेक स्त्रियाँ अच्छे कपड़ों या गहनों के लिये घर के पुरुषों का नाक में दम कर रखती हैं। बहुतेरे घरों में नित्य इन बातों के लिये लड़ाइयाँ-झगड़े हुआ करते हैं। यद्यपि गहने आदि बनवाना बहुत से अंशों में उपयोगी और लाभ-दायक है, और समय-समय पर गृहस्थों को उनसे बड़ी सहा-यता मिलती है, पर तो भी उसके लिये ऋण लेना या व्यापार में लगे हुए मूलधन में हाथ लगाना कदापि युक्तियुक्त नहीं है। सभ्य देशों में स्त्रियों की दशा इससे भी विलक्षण है। वहाँ प्रति सप्ताह एक नया फैशन निकलता है और सब स्त्रियों को उसी फैशन के अनुसार कपड़े आदि पहनने पड़ते हैं। एक सप्ताह में पहने हुए कपड़े दूसरे सप्ताह में पहनने योग्य नहीं रह जाते। इसका कारण यही है कि वहाँ के लोग किसी वस्तु या पुरुष का आदर उसके वास्तविक गुणों के कारण नहीं बल्कि उसके ऊपरी ठाठ-बाट के कारण करते हैं। उन्हें केवल दूसरों की प्रशंसा और प्रसन्नता संपादन करने की शिक्षा दी जाती है, सद्‌गुणी बनने और आत्मिक उन्नति करने की नहीं। वे फैशन के पीछे पागल बने रहते हैं और समाज में झूठी प्रतिष्ठा पाना उनका मुख्य उद्देश्य होता है। इन बातों का परिणाम यह होता है कि उनकी वास्तविक प्रसन्नता और सद्‌गुणों का नाश हो जाता है और किसी के प्रति सहानु-भूति या प्रेम करना वे एकदम भूल जाते हैं।

इन सब बातों से यही सिद्ध होता है कि समाज में फैशन और ऊपरी ठाठ-बाट ही अधिक आदरणीय होता है; धनवान् होना या कम से कम धनवानों की भाँति रहना ही उच्च श्रेणी का चिह्न समझा जाता है और निर्धन होना अथवा निर्धनों की भाँति रहना बड़ा भारी दोष या पाप। यदि उच्च कुल का कोई व्यक्ति कभी अभाग्यवश दरिद्र हो जाय और उसे परिश्रम करके अपनी गाढ़ी कमाई से बाल-बच्चों का पालन-पोषण करना पड़े तो लोग उसकी ईमानदारी और भलमनसाहत का ध्यान न करेंगे और उसे तुच्छ समझने लगेंगे। यदि मनुष्य अपनी परम प्यारी स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये परिश्रम करके धन कमाए तो वह सभ्य समाज की दृष्टि में निंदनीय ठहरेगा। लेकिन समाज और फैशन पर मरनेवाले लोग इस प्रकार तुच्छ और निंदित बनने की अपेक्षा अनेक प्रकार की दरिद्रता और कष्ट सहन करना अधिक उत्तम समझेंगे।

पुरुषों और स्त्रियों के वास्तविक और आवश्यक गुणों की ओर कोई ध्यान नहीं देता और दिखौआ या झूठी बातों का संसार आदर करता है। ऐसे विचारवाले समाज में रहकर मनुष्य का सद्गुणी और सुविचारी बनना प्रायः असंभव हो जाता है। धीरे-धीरे अच्छे गुणों और उत्तम विचारों का नाश हो जाता है और दुर्गुण और कुविचार उनका स्थान ले लेते हैं। नवीन सभ्यता के प्रचार के साथ ही साथ हमारे देश में भी फैशन पर प्राण देनेवाले लोग बढ़ते जाते हैं। ऐसी दशा में

जब कि शिक्षित और संपन्न देशों में ऐसे विचारों और व्यवहारों से अनेक हानियाँ होती हैं, तब भारत सरीखे दरिद्र और अशिक्षित देश में उनके कारण जो दुर्दशा होगी उसका अनुमान विचारवान् पाठक स्वयं कर सकते हैं।

यह दुर्गुण केवल धनवानों और उच्च श्रेणी के लोगों में ही नहीं होता बल्कि निर्धन और अंतिम श्रेणी के लोगों में भी पाया जाता है। साधारण और मध्यम श्रेणी के लोगों में तो यह और भी अधिकता से होता है। हाँ, शहर में रहनेवालों की अपेक्षा देहात या गाँव में रहनेवालों पर उसका प्रभाव बहुत कम पड़ता है। शहर में रहनेवाले सदा अपनी शक्ति के बाहर काम करते हैं, बहुमूल्य कपड़े पहनते और बढ़िया भोजन करते हैं और कोई मेला-तमाशा थियेटर नहीं छोड़ते। वे रुपया हाथ में आते ही, और कभी-कभी मिलने से पहले ही उसकी आशा पर ऋण लेकर खर्च कर देते हैं। उन्हें अपनी वृद्धावस्था या बाल-बच्चों के लिये कुछ धन संग्रह करने का अवकाश ही नहीं मिलता। फल यह होता है कि उनके आँखें बंद करते ही परिवार के लोग घोर दरिद्रता में फँस जाते हैं। कठिन परिश्रम से कमाया हुआ उनका सारा धन फैशन, ऊपरी ठाठ-बाट और झूठी प्रतिष्ठा पाने में ही व्यर्थ नष्ट हो जाता है और यदि सौभाग्यवश उनके पास सौ-दो सौ रुपए बच भी रहे तो वे उनके मरने पर उनके क्रिया-कर्म्म आदि में लग जाते हैं।

जिस गृहस्थी में पुरुष और स्त्री दोनों ही अपव्ययी हों उसके कष्ट का ठिकाना नहीं रह जाता। यह निश्चय है कि जो अपव्ययी होगा उसे दूसरों से ऋण लेने की आवश्यकता होगी। ऋण जब एक बार मनुष्य के साथ लग जाता है तब वह जल्दी उसका पीछा नहीं छोड़ता। एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा ऋण बढ़ता है और अंत में मनुष्य सिर से पैर तक ऋण से लद जाता है। रुपया हाथ में आते ही वह इधर-उधर अनावश्यक कार्यों में खर्च कर देता है और बजाज, बनिये और हलवाई का देनदार बना रहता है। धीरे-धीरे उसका ऋण बढ़ता जाता है और वह उसे चुकाने में एकदम असमर्थ हो जाता है। अंत में उसका दिवाला निकल जाता है और उसके पास एक कौड़ी नहीं बच जाती।

जो मनुष्य दूसरों से ऋण लेता है वह अपनी स्वतंत्रता अपने महाजन के हाथ बेच देता है और स्वयं उसके अधीन बन जाता है। ऋणी अपने महाजन के सामने आँख उठाने का साहस नहीं कर सकता। उसे सदा इस बात की चिंता लगी रहती है कि महाजन का कोई आदमी अपना रुपया लेने न पहुँच जाय अथवा किसी महाजन के वकील की नोटिस न आ जाय। यदि कोई अपना रुपया माँगे तो वह दबता और झूठे बहाने करता है। पर ये बहाने भी अधिक दिनों तक नहीं चल सकते और अंत में उसे दुर्दशा भोगनी ही पड़ती है।

अपव्यय के लिये दूसरों से ऋण लेना बड़ा भारी पागलपन है। हममें जिन चीजों के लेने की योग्यता है उनसे कहीं अधिक बढ़िया चीजें हम इसलिये लेते हैं कि वे हमें उधार मिलती हैं। दूकानदार हमें यह कहकर लालच दिलाता है—"आप यह चीज ले जाइए; हाथ में रुपया आने पर इसका दाम दे दीजिएगा।" हम भी बिना आगा-पीछा सोचे उसकी बातों में आ जाते और वह चीज ले लेते हैं। अर्थात् हम अपने बल पर नहीं बल्कि दूसरों के बल पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। हम बुरी तरह उधार के लालच में फँस जाते हैं और कुछ समय उपरांत उससे बहुत हानि उठाते हैं। एक बड़े विद्वान् का मत है कि यदि कोई ऐसा कानून बन जाय कि दूकानदारों से ली हुई चीजों का मूल्य यदि कुछ निश्चित समय के अंदर न दिया जा सके तो वह रकम डूब जाय और दूकानदार को उसे वसूल करने का कोई अधिकार न रह जाय, तो सर्वसाधारण का उससे बहुत उपकार हो सकता है। ऐसा होने पर कोई दूकानदार किसी को उधार चीजें न दिया करेगा और लोग इस दुर्गुण में फँसने से बच जायँगे। दूकानदारों का भी इससे यह लाभ होगा कि वे अनेक प्रकार की झंझटों से बच जायँगे और उनमें से बहुतों का दिवाला न निकला करेगा। यद्यपि यह विचार सरकार की ओर से कार्य रूप में परिणत किया जाना असंभव है, पर तो भी इसमें संदेह नहीं कि सर्वसाधारण और दूकानदार लोग यदि इसके

अनुसार कार्य करें तो दोनों का इससे बहुत अधिक उपकार हो सकता है।

जो लोग बुद्धिमान् और अनुभवी हैं वे कभी किसी प्रकार के लालच में नहीं फँस सकते और न यह चाहते हैं कि और लोग किसी प्रकार के लालच में फँसें। लालच, चाहे किसी प्रकार का हो, बहुत बुरा होता है। यदि कोई नौकर अपने स्वामी का पड़ा हुआ धन देखकर उसके लालच में फँस जाय और किसी प्रकार उसे हस्तगत कर ले तो यह कितना बड़ा पाप है। इसी प्रकार के और भी अनेक लालच होते हैं जिनमें फँसकर मनुष्य अपना चरित्र भ्रष्ट कर देता है। इसी लिये किसी प्रकार के लालच में फँसकर कोई चीज उधार लेना बहुत ही अनुचित है। अनेक ऐसे लोग, जो बड़ी ईमानदारी और मेहनत से धन कमाते हैं और जिनमें बहुत ही कम दुर्गुण होते हैं, केवल अपव्ययी होने और ठाट-बाट से रहने के कारण ही ऋण से लद जाते और बहुत कष्ट उठाते हैं। अपव्यय कभी-कभी मनुष्य को अनेक कुमार्गों पर ले जाता है और अनेक पापों का भागी बना देता है। जब लोगों को जैंटिलमैन बनने की धुन सवार होती है तब वे पहले अपने बाप-दादा की सारी प्रतिष्ठा गँवा बैठते हैं। आजकल शराबी, जुआरी, रंडीबाज और अपव्ययी होना ही "सभ्यता" का चिह्न समझा जाता है। जो लोग सभ्य होते हैं वे खाने-पीने, रुपए फूँकने, शराब पीने, नष्ट होने तथा और सब बुरे कामों

में दूसरे से तेज रहते हैं। आजकल की सभ्यता किसी परिश्रमी और सद्गुणी मनुष्य को सभ्य नहीं समझती बल्कि नष्ट-चरित्र और अपव्ययी को ही सभ्य मानती है।

आजकल के युवकों को ऋण लेने में किसी प्रकार की लज्जा छू तक नहीं जाती और यह दुर्गुण धीरे-धीरे सभी समाजों में फैलता जाता है। सब प्रकार के चसकों में आजकल दिन पर दिन अधिक धन व्यय होता है पर उसकी पूर्त्ति के लिये आय की वृद्धि नहीं होती। पर इन बातों का कोई ध्यान नहीं करता और जिस प्रकार हो सकता है, लोग मजा उठाने का यत्न करते हैं। इसी के लिये उन्हें ऋण लेना पड़ता है जो कुछ समय के उपरांत उनके जी का जंजाल हो जाता है। जो मनुष्य एक बार अपव्ययी हो जाता है उसका इस दुर्गुण से छूटना बहुत ही कठिन होता है। अपव्यय के लिये आजकल लोग जिस समय उधार लेते हैं उस समय प्रायः उन्हें चुकाने का ध्यान भी नहीं रहता। यह दुर्गुण सर्वसाधारण के नैतिक चरित्र को बुरी तरह नष्ट करता है और सभी श्रेणियों के लोगों को दुखी और दरिद्र बनाता है। इस समय लोगों का नैतिक चरित्र बहुत ही गिर चुका है और उसे सुधारने में बहुत समय लगेगा। इस बीच में यदि सब प्रकार के खर्चों से बचने का कोई मार्ग न भी मिले, तो भी सुधार का सबसे अच्छा उपाय यह है कि कभी किसी प्रकार का उधार न लो, और यदि अभाग्य या मूर्खतावश

तुम पर कुछ ऋण हो गया हो तो जहाँ तक शीघ्र हो सके तुम उसे चुका दो। जिस मनुष्य पर किसी प्रकार का ऋण हो वह कभी स्वतंत्र नहीं कहा जा सकता। उसे सदा महाजनों की ऊँची-नीची बातें सुननी पड़ती हैं और पड़ोसी उसकी हँसी उड़ाया करते हैं। स्वयं अपने घर में ही वह दासों की भाँति रहता है। उसका नैतिक चरित्र बहुत भ्रष्ट हो जाता है; और यहाँ तक कि उसके संबंधी और घर के लोग ही उसे तुच्छ समझने और घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं।

अपना ऋण चुकाना मानों अपने कंधे पर से दासत्व का जूआ उतारना है। किसी विद्वान् ने बहुत ठीक कहा है कि मितव्यय से ही स्वतंत्रता की उत्पत्ति होती है। जो मनुष्य कर्जदार रहता है वह कभी स्वतंत्र नहीं हो सकता। ऋण से मनुष्य की केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता ही नष्ट नहीं होती बल्कि आगे चलकर उससे उसका नैतिक चरित्र भी बिलकुल भ्रष्ट हो जाता है। कर्जदार की सदा बहुत बुरी दशा रहती है। उच्च और प्रशंसनीय सिद्धांतवाले मनुष्यों को सदा ऐसे ऋण से दूर भागना चाहिए जिसे वे चुका न सकें। उन्हें कभी दूसरों के धन से बढ़िया कपड़ा पहनना, शराब पीना, जूआ खेलना या अपना ठाट बनाना न चाहिए। अनेक ऐसे उदाहरण हैं जिनमें कर्जदार को अपने महाजन से बुरी तरह बेइज्जत होना पड़ा है और जिन लोगों ने ऐसी बेइज्जती से शिक्षा ग्रहण करके

कर्ज लेना और अपव्यय करना छोड़ दिया है वे बहुत धनवान्, सुखी और प्रतिष्ठित हो गए हैं।

प्रत्येक मनुष्य को अपने आय-व्यय का सदा पूरा-पूरा हिसाब लिखना चाहिए। इससे उसे प्रतिदिन यह मालूम होता रहेगा कि इस समय उसके पास कितने रुपए हैं और भविष्य में उसे कितने खर्च की आवश्यकता है। यदि वह विवाहित हो तो उसे उचित है कि वह नित्य अपनी आर्थिक दशा अपनी स्त्री को भी समझा दिया करे। यदि उसकी स्त्री कुछ भी समझदार होगी तो वह यथाशक्ति घर के खर्च घटा-कर कुछ बचाने में उसे सहायता देगी और उसे प्रतिष्ठा-पूर्वक जीवन-निर्वाह करने के योग्य बनावेगी। कोई सुयोग्य स्त्री ऋण लेकर कोई अनुचित और अनावश्यक कार्य्य करने में सहमत न होगी।

जो व्यक्ति अपनी आय से अधिक व्यय नहीं करना चाहते उन्हें हिसाब जानना परम आवश्यक है। स्त्रियाँ साधारणत: हिसाब आदि से अनभिज्ञ हुआ करती हैं। उन्हें इस विषय की कोई शिक्षा नहीं दी जाती। लेकिन गृहस्थी का कार्य्य भली भाँति चलाने के लिये हिसाब जानने की बहुत आवश्य-कता होती है। स्त्री या पुरुष जब तक हिसाब न जानें तब तक वे निश्चय नहीं कर सकते कि मकान के किराये, भोजन, वस्त्र आदि में उन्हें प्रति क्षण कितना व्यय करना चाहिए। जब तक उन्हें जोड़ और बाकी का ज्ञान न हो तब तक उन्हें अपने

आय और व्यय का अनुमान नहीं हो सकता। इसके सिवा वे बाजार से मोल ली हुई चीजों या नौकर-मजदूरनी के वेतन का भी हिसाब नहीं लगा सकते। हिसाब न जानने के कारण केवल व्यर्थ धन ही नष्ट नहीं होता बल्कि दरिद्रता भी आ घेरती है। बहुत से गृहस्थ केवल इसी लिये दुर्दशाग्रस्त हो जाते हैं कि उन्हें हिसाब का पूरा ज्ञान नहीं होता।

हमारे देश में माता-पिता अपने बालक-बालिकाओं का विवाह बहुत ही थोड़ी अवस्था में कर देते हैं। वर या कन्या को संसार और गृहस्थी की ऊँच-नीच का कुछ भी ज्ञान नहीं होता, वे गृहस्थी के भारी उत्तरदायित्व को कुछ भी नहीं समझते। अपने भविष्य-जीवन की कठिनाइयों का उन्हें कुछ भी अनुमान नहीं होता। परिणाम यह होता है कि उनका जीवन बहुत ही अनस्थिर और दुःखपूर्ण हो जाता है। हमारा यह तात्पर्य्य नहीं है कि बीस वर्ष की कन्या और तीस वर्ष के वर का विवाह किया जाय; लेकिन इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि दोनों को संसार की स्थिति का थोड़ा-बहुत ज्ञान अवश्य हो जाय; नहीं तो उन दोनों का जीवन प्रायः दुःखपूर्ण ही रहेगा। गार्हस्थ्य जीवन में विचार और बुद्धि से बहुत बड़ी सहायता मिलती है; जो विचार और बुद्धि से काम लेता है उसके सभी कार्य्य व्यवहार, सरलता और उत्तमता-पूर्वक होते हैं। जरा से अविचार या भूल से बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ आ पड़ती हैं जिनसे बचना बहुत कठिन हो जाता

है। इस प्रकार मनुष्य की जीवन-यात्रा बहुत ही दुःखपूर्ण हो जाती है। इसलिये जब तक वर या कन्या को संसार का थोड़ा-बहुत ज्ञान न हो जाय तब तक उन पर गृहस्थी का भार डालना बहुत ही अन्याय है।

यदि इस प्रकार के दंपति को कभी कोई संतान हो जाय तो उसके पालन-पोषण और शिक्षा आदि का वे कोई योग्य प्रबंध नहीं कर सकते। ऐसी संतानों का आदर गुड़िया और खिलौने से अधिक नहीं होता। ऐसे दंपति का एक दिन भी सुख से बीतना कठिन हो जाता है। जब इस प्रकार गृहस्थी दुःखपूर्ण हो जाती है तब उस पर चारों ओर से अनेक प्रकार की विपत्तियाँ भी आ पड़ती हैं। जब सुख का नाश हो जाता है, दिन पर दिन दुःख बढ़ते जाते हैं और विपत्तियाँ सब ओर से घेर लेती हैं तब पति और पत्नी में परस्पर की सहानुभूति भी उठ जाती है और एक को दूसरे का कोई प्रेम नहीं रह जाता! ऐसी गृहस्थी के दुःख का वर्णन बहुत ही कठिन है!

प्रायः ऐसा होता है कि जब मनुष्य पर दरिद्रता या विपत्ति आती है तब उसमें सहानुभूति या प्रेम नहीं रह जाता। दरिद्रों के सिवा उन धनवानों में प्रेम या सहानुभूति का अभाव होता है जो प्रसन्नचित्त या सहृदय नहीं होते। ऐसे धनवानों के यहाँ आपको सब प्रकार की सुख-सामग्री तो अवश्य मिलेगी, पर किसी प्रकार का वास्तविक सुख न दिखलाई देगा। उनके संबंधी आपको मलिनमुख और दुखी मालूम होंगे। शारी-

रिक सुख पर भी गार्हस्थ्य आनंद कुछ निर्भर रहता है। पर मनुष्य की उत्तम और निकृष्ट दशा का सबसे अच्छा चिह्न उसका नैतिक जीवन ही है।

जो मनुष्य सदा दूसरों का अनुकरण करता है, और अपने मित्रों और साथियों को प्रसन्न करने के लिये सदा उन्हीं के इच्छानुसार कार्य्य करता है वह आप ही अपना शत्रु होता है। वह अपना सर्वस्व अपने उन मित्रों की प्रसन्नता के लिये ही नष्ट कर देता है जो विपत्ति में कभी उसके काम नहीं आते। अंत में उसे दूसरों से ऋण लेना पड़ता है और हैंडनोट या तमस्सुक लिखना पड़ता है और यह मूर्खता बहुत बुरी तरह उसका अंत कर देती है। सदा दूसरों का कहना मानना और उनकी प्रसन्नता के लिये भले-बुरे सब प्रकार के कार्य्य करना ही ऐसे लोगों का सिद्धांत रहता है। ऐसे लोगों से आप जो कुछ चाहें बड़ी सरलता से करा सकते हैं; क्योंकि वे किसी काम में "नहीं" करना बिलकुल नहीं जानते।

मान लीजिए कि किसी ऐसे मनुष्य को उसके पिता के मरने पर बहुत बड़ी संपत्ति मिली। अब उसे कई संबंधी आ घेरते हैं और उससे उस धन में से अपना हिस्सा माँगते हैं। वह "नहीं" करना तो जानता ही नहीं, और अपने स्वाभाविक संकोच के कारण उनकी प्रार्थना स्वीकार कर लेता है। जब तक उसके पास धन रहता है तब तक उसे अनगिनत

मित्र घेरे रहते हैं। सारा संसार उसे भला आदमी कहता है और सदा उसी का जिक्र किया करता है। ऐसे लोगों से किसी प्रकार के दस्तावेज या तमस्सुक पर हस्ताक्षर करा लेना कोई बड़ी बात नहीं होती। धीरे-धीरे उसकी सारी संपत्ति नष्ट हो जाती है और वह दरिद्र हो जाता है। पर इतना होने पर भी उसकी आँखें नहीं खुलतीं। ऐसा मनुष्य एक प्रकार का हौज होता है जिसमें से सभी प्यासे आकर पानी पीते हैं; एक प्रकार की चक्की होती है जो दूसरों का आटा पीसने के काम आती है अथवा एक प्रकार का गधा होता है जिस पर सब लोग आवश्यकतानुसार आकर चढ़ लेते हैं। इस प्रकार के भले आदमी कभी अपना जीवन तक देने में इनकार नहीं करते।

मनुष्य के कल्याण और सुख के लिये यह बात बहुत आवश्यक है कि उसको उचित अवसर पड़ने पर "नहीं" कहने का साहस हो। बहुत से लोग केवल दूसरों की प्रार्थना अस्वीकार न कर सकने के कारण ही नष्ट हो जाते हैं। जब हम किसी बात को अस्वीकार करने का साहस नहीं कर सकते तब हममें अनेक दोषों और अवगुणों का बीजारोपण हो जाता है। उचित अवसर पर एक छोटा सा शब्द न कह सकने के कारण ही हम जान-बूझकर आत्म-बलि दे देते हैं। इस दोष से बचने के लिये हमें उचित है कि ज्योंही हमें किसी प्रकार का लोभ दिखलाया जाय त्योंही हम साहस करके

"नहीं" कह दें। हमारा मनो-देवता हमारे पक्ष का समर्थन करेगा और हमारा यह गुण दिन पर दिन बढ़ता जायगा। यदि किसी प्रकार का लोभ देखकर तुम उससे बचने का साहस नहीं कर सकते तो समझ लो कि अब तुममें सद्-गुण नहीं रह गया। उस समय तुम्हारी आत्म-निर्भरता पर बड़ा भारी धक्का पहुँचेगा। संभव है कि पहले पहल तुम्हें किसी बात में "नहीं" करने में कुछ कठिनता हो, पर आगे चलकर ज्यों-ज्यों तुम उसका अधिक व्यवहार करते जाओगे त्यों-त्यों तुम्हारी शक्ति बढ़ती जायगी। व्यर्थ और अनुचित लोभ, मूर्खता, बुरे अभ्यास तथा और दोषों से बचने का सबसे अच्छा उपाय किसी कार्य्य के आरंभ में ही "नहीं" कर देना है। यदि ठीक समय पर "नहीं" कर दिया जाय तो उससे अनेक प्रकार के लाभ होते हैं।

कोई मनुष्य अपनी आय से अधिक व्यय करता है और अंत में बिलकुल दरिद्र हो जाता है। वह बहुत सा ऋण छोड़कर मर जाता है, पर तो भी समाज उसका पीछा नहीं छोड़ता। उसका क्रिया-कर्म्म आदि उसी प्रकार करना पड़ता है जिस प्रकार समाज के और लोगों का होता है। इस दशा तक पहुँचने पर भी लोकाचार से छुटकारा नहीं होता और बहुत भली भाँति उसका क्रिया-कर्म्म करने के लिये और ऋण लिया जाता है। धार्म्मिक क्रियाओं में, जिनका होना परम आवश्यक है, बहुत कम खर्च होता है, पर लौकिक

कार्य्यों के लिये बहुत अधिक खर्च करना पड़ता है। लोकाचार के लिये ही अपने सामर्थ्य से बाहर खर्च करना नाश का कारण होता है।

एक और विलक्षणता इसमें यह है कि धनवानों और उच्च श्रेणी के लोगों में लोकाचार का उतना अधिक ध्यान नहीं किया जाता जितना मध्यम और अंतिम श्रेणी के लोगों में होता है। धनवानों को इस बात की बहुत ही कम चिंता रहती है कि दूसरे लोग उनके संबंध में क्या कहेंगे। लेकिन मध्यम श्रेणी के लोगों को इस बात का बहुत अधिक ध्यान रहता है और वे अपने लिये ऊपरी ठाट-बाट बहुत आवश्यक समझते हैं। किसी मध्यम श्रेणी या समाज का कोई आदमी एक काम अपने सामर्थ्य से बाहर कर बैठता है तो और लोग भी उसका अनुकरण करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं, और धीरे-धीरे वह सब पर एक प्रकार का कर हो जाता है।

गृहस्थी का पालन करनेवाला मनुष्य तो मर जाता है और शेष असहाय और असमर्थ लोगों पर उसके क्रिया-कर्म आदि का भार आ पड़ता है। अब आप उस विधवा स्त्री के अनाथ बालकों के दुःख और कष्ट का अनुमान कर सकते हैं जिन्हें महापात्र को बिदा करने और बिरादरी को भोजन कराने की झंझटें उठानी पड़ती हैं। हज़ारों ऐसी घटनाएँ होती हैं जिनमें घर के मालिक के मर जाने पर बची हुई पूँजी का एक-एक पैसा इन्हीं कामों में खर्च हो जाता है और छोटे- मे

दो-एक जेवरों के बिकने तक की नौबत आ जाती है। लेकिन यदि यह धन लोकाचारवाली मूर्खता में न व्यय किया जाय तो उससे उन दीन और अनाथों के पालन आदि में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है।

इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकार की बहुत प्राचीन प्रथा को एकदम रोक देना प्रायः असंभव ही है। पर तो भी लोगों में इस प्रकार का साहस उत्पन्न कराने की बहुत अधिक आवश्यकता है कि यदि उनमें उतना सामर्थ्य न हो तो वे केवल धार्मिक क्रियाएँ ही करके संतोष कर लें और लोकाचार की मूर्खता में फँसना अस्वीकार कर दें। ऐसे अवसरों पर इस बात की बहुत कम चिंता होनी चाहिए कि जगत् क्या कहेगा? यदि लोग थोड़ी बुद्धिमत्ता से काम लेकर अपनी दशा का ध्यान रखते हुए मरने से पूर्व अपने संबंधियों से कह दें कि उनकी मृत्यु के उपरांत व्यर्थ और अनावश्यक खर्च न किए जायँ तो और भी अच्छा है। समाज में कुछ लोग ऐसे भी निकल आवेंगे जिन्हें पहले से ही इन बातों की चिंता हो; और यदि उन लोगों को इस कार्य्य में सहायता दी जाय तो शीघ्र ही बहुत कुछ सुधार हो सकता है। आवश्यकता, केवल साहसपूर्वक अपने विचारों को प्रकट करने की है।

———

ग्यारहवाँ प्रकरण

ऋण

लोग यह नहीं जानते कि जब वे ऋण लेने लगते हैं तब वे अपने लिये कितनी बड़ी विपत्ति मोल लेते हैं। ऋण, चाहे किसी काम के लिये लिया जाय, बहुत बुरा होता है। जब तक मनुष्य अपना ऋण चुका न दे तब तक वह उसके गले में फाँसी के फंदे की तरह पड़ा रहता है। जिस मनुष्य पर कुछ ऋण होता है उसके परिवार का कल्याण नहीं होता। उससे गृहस्थी के सब सुखों का समूल नाश हो जाता है।

जिन लोगों की बहुत बड़ी और निश्चित आय होती है वे भी ऋण के कारण बरसों बड़ी कठिनाइयाँ झेलते हैं। जिसके ऊपर कुछ ऋण होता है वह बिना उसे चुकाए कभी कुछ जमा नहीं कर सकता। न तो वह कोई जायदाद मोल ले सकता है, न बंक में रुपया जमा कर सकता है और न जान बीमा ही करा सकता है। उसकी सारी आय, साधारण खर्च के बाद केवल ऋण चुकाने में निकल जाती है। ऋण के बोझ से बड़े-बड़े जमींदार और महाजन भी बड़ा कष्ट पाते हैं। वे या उनके पूर्वज अनेक प्रकार के दुर्व्यसनों में फँसकर अपनी जायदाद पर बहुत बड़ा ऋण ले लेते हैं और उसका चुकाना

उनके लिये असंभव सा हो जाता है। कभी-कभी यह ऋण बढ़कर उनकी जायदाद के मूल्य से कहीं अधिक हो जाता है। इस समय भारत के अधिकांश राजाओं, नवाबों और बड़े-बड़े जमींदारों की जायदाद और रियासत किसी न किसी महाजन के पास रेहन पड़ी है।

बहुत बड़े आदमी प्राय: कर्ज से लदे रहते हैं। लोग कहते हैं कि अमीरी और कर्ज का बहुत पक्का साथ है। बड़े आदमियों का कर्ज भी भारी होता है, क्योंकि लोग उनका अधिक विश्वास करते हैं। यही दशा बड़े साम्राज्यों और जातियों की होती है। जिन मनुष्यों या जातियों पर बहुत ऋण होता है उनकी ओर सदा लोगों का ध्यान लगा रहता है। उनके नाम बहुत से बही-खातों और रजिस्टरों में लिखे जाते हैं और उनके संबंध में लोग सदा अनेक प्रकार के विचार प्रकट किया करते हैं। जो आदमी कर्जदार नहीं होता उसे बहुत ही कम लोग जानते हैं; पर जो कर्जदार होता है उस पर सब की दृष्टि लगी रहती है। लोग सदा उसके स्वास्थ्य की चिंता करते रहते हैं और यदि वह कहीं विदेश जाता है तो लोग उसके लौटने की प्रतीक्षा किया करते हैं। तात्पर्य्य यह कि हर दम सबका ध्यान उसी की ओर लगा रहता है।

महाजन को लोग सदा कठिन और क्रूर समझते हैं और ऋण लेनेवाला मनुष्य उदार और परोपकारी कहा जाता है। ऋण लेनेवाले के साथ सदा सबकी सहानुभूति होती है; पर

महाजन की दशा पर किसी को दया नहीं आती। पर वास्तव में ऋण लेनेवाले की दशा ही बहुत बुरी होती है; उसे अनेक प्रकार की विपत्तियाँ सहनी पड़ती हैं। वह सदा अदालत के चपरासियों और कुर्क अमीनों से घिरा रहता है। ज्योंही कोई आकर उसका दरवाजा खटखटाता है त्योंही उसका मुँह उतर जाता है और जी धड़कने लगता है। न तो उसे घर में सुख मिलता है और न उसे बाहर निकलने का साहस होता है। उसका सारा सुख नष्ट हो जाता है और लोग उसे संदेह और घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं। वह स्वयं अपनी दृष्टि में भी तुच्छ हो जाता है। जब लोग उससे रूखे होकर अपना रुपया माँगते हैं तब उसे झूठे बहाने करने पड़ते हैं। वह अपनी स्वाभाविक स्वतंत्रता नष्ट कर देता है और उसे दूसरों की लाल-पीली आँखें देखनी पड़ती हैं। इस विपत्ति में उसके मित्र और संबंधी भी उसकी ओर से उदासीन हो जाते हैं। अंत में उसे कभी-कभी जेल तक जाना पड़ता है।

पर यदि मनुष्य चाहे तो वह ऋण और उसके साथ होनेवाली दुर्दशा से बच सकता है और स्वतंत्रतापूर्वक अपना जीवन बिता सकता है। इसका सबसे अच्छा उपाय है—अपनी सामर्थ्य से अधिक खर्च न करना। पर अभाग्यवश आजकल प्रायः लोग ऐसा नहीं करते। हम लोग भविष्य के लाभ की आशा पर इस समय ऋण ले लेते हैं, पर किसी प्रकार के लोभ में पड़कर अपना खर्च नहीं रोक सकते। हम

सजे-सजाए घर में रहना चाहते हैं, बढ़िया सामान मोल लेते हैं और खूब नाच-तमाशे देखते हैं और कभी इस बात का ध्यान नहीं करते कि हम अपना नहीं बल्कि दूसरों का रुपया खर्च कर रहे हैं। मनुष्य को सदा अपनी चादर देखकर पाँव पसारना चाहिए और क्षणिक या झूठे सुख के लिये अपनी भविष्य की आय नष्ट न करनी चाहिए। कर्ज लेकर अपना भविष्य नष्ट करना बहुत ही बुरा है। इस काम में नगद रुपया और उधार चीजें देनेवाले भी उतने ही दोषी हैं जितने कि लेनेवाले। प्रत्येक मनुष्य को अपनी वास्तविक दशा का पूरा ज्ञान होता है और यदि वह चाहे तो अपना व्यय परिमित रखकर भविष्य या विपत्तिकाल के लिये कुछ पूँजी जमा कर सकता है। ऐसा करने से उसे सदा यह मालूम रहता है कि उसकी वास्तविक आर्थिक दशा कैसी है। पर यदि वह अपना व्यय बढ़ाकर उधार चीजें लेने लगे तो उसे अपने देने या पावने का कुछ भी हिसाब नहीं मालूम होता। जो मनुष्य उधार लेता है वह प्रायः धोखा खाता है। चारों ओर से उसके घर में चीजें आने लगती हैं और वह यही समझता है कि मानों कभी उसे उन चीजों का दाम देना ही न पड़ेगा। पर जब अंत में वह ऋण से खूब लद जाता है तब उसे मालूम होता है कि अब तक उसने जितना शहद खाया है उसकी अपेक्षा उसके बाद लगनेवाले विषैले डंक की पीड़ा कहीं अधिक होती है।

बड़े-बड़े विद्वान् और बुद्धिमान् भी ऋण के जाल से नहीं बचते। बुद्धिमत्ता से मितव्यय और धनसंग्रह करने का कोई संबंध नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि व्यावहारिक ज्ञान की अपेक्षा विद्या या बुद्धि कहीं अधिक श्रेष्ठ है; पर इसका यह तात्पर्य्य नहीं है कि विद्वान् या बुद्धिमान् होकर मनुष्य व्यावहारिक ज्ञान से बिलकुल शून्य रह जाय। उन्नीसवीं शताब्दि के मध्य में पं० उमापतिदत्त नामक एक तिवारी ब्राह्मण फैजाबाद में रहते थे। तिवारीजी संस्कृत-साहित्य के दिग्गज विद्वान् थे; पंडित-मंडली में उनका बहुत बड़ा मान था और संस्कृत में उन्होंने अनेक बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे थे। उनका उपनाम था वृद्ध वशिष्ठ। यह सब कुछ होने पर भी पंडितजी को ऋण लेने का असाध्य रोग था। जब आपका ऋण बहुत अधिक बढ़ गया तब एक बार उनके कुछ महाजनों ने मिलकर उन्हें शपथ दे दी कि यदि आप बिना हम लोगों का रुपया चुकाए घर से बाहर निकलें तो महामांस खायँ। पंडितजी उस समय ऋण चुकाने में बिलकुल असमर्थ थे इसलिये उन्होंने लाचार होकर क्षेत्र-संन्यास ले लिया और वे जब तक जीते रहे, कभी घर से बाहर न निकले। अयोध्या के तत्कालीन राजा मानसिंह उनके बड़े भक्त थे और प्रायः उनके मकान पर जाया करते थे। राजा साहब ने कई बार उनसे कहा भी कि यदि आप घर से बाहर निकलना चाहें तो मैं आपका ऋण चुका सकता हूँ, पर पंडितजी ने ऐसा

करना स्वीकार नहीं किया और वे अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे। जो लोग अपव्ययी होते हैं, उनकी आय और संपत्ति यदि कितनी ही अधिक क्यों न हो, उन्हें ऋण लेना ही पड़ता है। हमारे देश में बड़े-बड़े नवाब और जमींदार केवल अपव्यय करने के लिये अपनी जायदाद रेहन रखते हैं। इस रेहन रखने में भी एक विशेषता होती है। जब कोई अपव्ययी बड़ा आदमी किसी महाजन से ऋण लेना चाहता है तब महाजन उससे प्रायः दिए हुए रुपए के दुगने और चौगुने रुपयों का कागज लिखा लेता है। अपव्यय उन्हें इतना अंधा बना देता है कि वे दस हजार रुपए नगद लेकर बीस या चालीस हजार रुपए तक का तमस्सुक लिख देते हैं। बरस दो बरस बाद महाजन नालिश करके उनकी सब जायदाद नीलाम करा लेता और कभी-कभी स्वयं ही उसे खरीद भी लेता है। यही कारण है कि आजकल बड़ी-बड़ी जमींदारियाँ जमींदारों के हाथ से निकलकर बनियों और महाजनों के हाथ में चली आ रही हैं।

निर्धन से निर्धन मनुष्य ऋण से नष्ट होने से नहीं बचते। इस देश के गरीबों और छोटे महाजनों में एक प्रकार का लेन-देन होता है जो "टकासी" कहलाता है। इसमें उधार लिए हुए रुपए पर प्रति रुपया प्रति दिन "टका" अर्थात् दो पैसा सूद देना पड़ता है। यदि किसी महाजन से कोई आदमी २) उधार ले तो जब तक वह नगद दो रुपए लाकर महाजन को

न दे दे तब तक उसे नित्य -) सूद महाजन को देना पड़ता है। यदि उस गरीब के पास वह रुपया एक महीने रह जाय तो २) मूल के सिवा उसे १॥।=) ब्याज भी देना पड़ता है। बड़ी रकमों के लिये सवाई हुंडियाँ भी खूब चलती हैं जिनमें उधार लेनेवाले को १००) रु० लेकर एक साल के अंदर १२५) रु० चुकाना पड़ता है। फल यह होता है कि बेचारों के घर के बरतन और शरीर के कपड़े तक बिक जाते हैं पर तो भी उस ऋण से उनकी मुक्ति नहीं होती। यद्यपि ऐसा ऋण अपव्यय के लिए नहीं होता, पर तो भी यदि वे लोग मित-व्यय करें तो उनके लिये कभी ऐसा प्रसंग न पड़े।

लखनऊ के नवाब वाजिदअली शाह की उदारता और उसके परिणाम स्वरूप उनकी दुर्दशा का हाल कौन नहीं जानता। अंतिम और बहुत ही गई बीती दशा में भी मटिया-बुर्ज में जब एक बार एक आदमी उनके पास एक चोटीवाली चील लाया तब नवाब साहब ने, पास में रुपया न होने के कारण, उसे चालीस हजार रुपए मूल्य के पलँग का एक जड़ाऊ पाया दे दिया! इसी प्रकार का दैनिक अपव्यय ही लखनऊ की नवाबी के नाश का कारण था।

उर्दू के प्रसिद्ध शायर मिरजा गालिब भी कर्ज लेने के बड़े शौकीन थे। मिरजा साहब का जन्म बहुत उच्च कुल में हुआ था और वे उर्दू और फारसी के बहुत ऊँचे दरजे के कवि थे। कुछ समय तक उनको रामपुर रियासत से २००) मासिक

मिला करता था। गदर के बाद उन्हें सरकार से भी अच्छी पेंशन मिलने लगी थी। पर मिरजा साहब अपने अपव्यय के कारण सदा सुख बने रहते थे। रुपया तो उनके हाथ में कभी ठहरता ही न था। उन्हें शराब पीने की बहुत बुरी लत थी और वे प्राय: नशे में ही रहा करते थे। अपने जीवन में उन्होंने निर्धनता और अपव्यय के कारण बहुत बड़े-बड़े कष्ट उठाए पर उनका व्यय कभी कम न हुआ। जब उनका ऋण बहुत अधिक बढ़ गया तब कुछ महाजनों ने उन पर नालिश कर दी। उन्होंने मुफ्ती साहब की अदालत में पहुँचते ही यह शेर पढ़ा था,—

कर्ज की पीते थे मय लेकिन समझते थे कि हाँ।
रंग लायगी हमारी फाक:मस्ती एक दिन ॥

ऋण न चुका सकने के कारण मिरजा साहब को कुछ दिनों तक जेल में भी रहना पड़ा था। पर तो भी उनका अपव्यय मरते समय तक न रुका। ऋण लेने में वे बड़े सिद्धहस्त थे और कभी लिए हुए ऋण की परवाह न करते थे। एक बार मिरजा साहब अपनी बीमार बहन को देखने गए थे। बहन का अंतकाल आ पहुँचा था, इसलिये हाल-चाल पूछने पर उसने मिरजा साहब से कहा कि मुझ पर कुछ ऋण है और मुझे इस बात की बड़ी चिंता है कि मैं मरने से पहले वह ऋण चुका नहीं सकती। मिरजा साहब ने हँसते हुए कहा—भला यह भी कोई चिंता की बात है? खुदा के यहाँ भी क्या मुफ्ती सदर-उद्दीन खाँ बैठे हुए हैं जो डिगरी करके पकड़वा बुलायेंगे!

एक दिन मिरजा साहब का छोटा लड़का खेलते-खेलते उनके पास चला गया और उनसे पैसे माँगने लगा। मिरजा साहब ने कहा—इस समय पैसे नहीं हैं। लड़का संदूक खोलकर उसमें पैसे ढूँढ़ने लगा। मिरजा साहब ने कहा—

दामो दर्म अपने पास कहाँ ?
चील के घोंसले में माँस कहाँ ?

अर्थात् जिस प्रकार चील के लिये मांस संग्रह करके रखना असंभव है, उसी प्रकार मिरजा के पास रुपया-पैसा जमा होना भी असंभव ही है।

हमारे भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र भी अपव्यय में बहुतों से बढ़े हुए थे। पर इनके अपव्यय में थोड़ी विशेषता अवश्य थी। ये साहित्य-सेवा में रुपए लगाते थे, दीन-दुःखियों की सहायता करते थे, देशोपकार के कामों में चंदे देते थे, ठाकुर-सेवा का प्रबंध करते थे और साथ ही साथ ऐयाशी भी करते थे। अर्थात् इनके हाथ से धन जाने के अनेक मार्ग थे। इनका बढ़ा हुआ खर्च देखकर एक बार स्वर्गीय महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह (काशीनरेश) ने इन्हें अनेक प्रकार से समझा-बुझाकर कहा—"बबुआ ! घर को देखकर काम करो।" पर "बबुआ" को इन बातों से क्या मतलब था ? उन्होंने चट उत्तर दिया—"हुजूर ! इस धन ने मेरे पूर्वजों को खाया है, अब मैं इसे खाऊँगा।" और वास्तव में उन्होंने किया भी ऐसा ही। उनके हाथ जो कुछ पड़ा वह सब उन्होंने खा-पकाकर ही छोड़ा।

बनारस के कई महाजनों ने इन्हें ऋण देकर अपनी रकम का तिगुना और चौगुना तक लिखवा लिया था। एक महाशय ने एक छोटी नाव और थोड़ा रुपया देकर भारतेंदुजी से तीन हजार रुपए का कागज लिखवा लिया और बाद में उन पर दावा कर दिया। उस समय सर सैयद अहमदखाँ बनारस के सदरआला थे, उन्हीं के इजलास में मुकदमा पेश हुआ। भारतेंदुजी की वास्तविक दशा जानकर सैयद साहब को उन पर बहुत दया आई और उन्होंने चाहा कि महाजन को उचित मूलधन की ही डिग्री दी जाय। इसलिये उन्होंने असल रकम जानने की बहुत चेष्टा की पर भारतेंदुजी ने उन्हें कुछ भी न बतलाया और अंत में सैयद साहब से स्पष्ट कह दिया—"मैं साधारण धन के लिये अपना धर्म्म नहीं बिगाड़ सकता। हुंडी मुझसे जबरदस्ती नहीं लिखवाई गई है, बल्कि मैंने जान-बूझकर लिखी है। इसलिये मैं धन देने के भय से अपना सत्य भंग नहीं कर सकता।" फल यह हुआ कि अपनी लाखों रुपए की संपत्ति उन्होंने नष्ट कर दी और अंत में वे नालायक समझे जाने लगे।

बहुत बड़े-बड़े और जगत्प्रसिद्ध अँगरेज कवि भी बड़े ही अपव्ययी और ऋण लेनेवाले हो गए हैं। शेरिडन, गोल्डस्मिथ, बाइरन, मिल्टन, स्काट आदि सभी कर्ज लेने में बड़े बहादुर थे। इनमें से कुछ तो कई बार जेल गए थे। मिल्टन ने अपने "पाराडाइज लास्ट" के प्रथम संस्करण का स्वत्व

केवल पाँच पाउंड पर बेच दिया। प्रायः देखा जाता है कि साहित्यसेवी कभी लक्ष्मी की परवाह नहीं करते और सदा निर्धन और ऋणी बने रहते हैं। लेकिन औरों की भाँति साहित्यसेवियों का भी यह दोष क्षमा करने के योग्य नहीं है। साहित्यसेवियों को इस बात का कोई अधिकार नहीं है कि वे समाज का किसी प्रकार का अपराध करें और समाज उस पर कुछ ध्यान न दे। औरों की भाँति साहित्यसेवियों को भी सदा मितव्ययी रहना चाहिए। इसमें संदेह नहीं कि साहित्यसेवियों के साथ लोगों को उदारता-युक्त व्यवहार करना चाहिए; पर इन सबसे बढ़कर बात यह है कि साहित्य-सेवी भी औरों की भाँति अपने पैरों पर आप ही खड़े हों और केवल दूसरों के भार न बनें।

बारहवाँ प्रकरण

धन और दान

मनुष्य को उदार और महानुभाव बनने के लिये मितव्ययी होना चाहिए। मितव्यय केवल अपने आप तक ही नहीं रह जाता बल्कि उससे दूसरों को भी बहुत कुछ लाभ पहुँचता है। उसी की सहायता से बड़ी-बड़ी धर्म्मशालाएँ और पाठशालाएँ बनती हैं तथा परोपकार के अन्य बड़े-बड़े कार्य्य होते हैं। उदारता और महानुभावता मनुष्य के आत्मिक गुणों से उत्पन्न होती है। उसी ने महारानी अहिल्याबाई, रानी भवानी, मिस फ्लोरेंस नाइटिंगेल आदि को इतने ऊँचे आसन पर पहुँचाया और उन्हें सर्वपूज्य बनाया है। केवल धनवान् ही नहीं बल्कि निर्धन भी इस सद्गुण से अलंकृत हो सकता है और दूसरों का अनेक प्रकार से बहुत कुछ उपकार कर सकता है।

जो मनुष्य आस्तिक और सहृदय होता है उसे परोपकार करना एक प्रकार का कर्तव्य मालूम होता है; और वास्तव में यह है भी मनुष्य का कर्त्तव्य ही। परोपकार करना केवल व्यक्तिगत ही नहीं बल्कि सामाजिक कर्त्तव्य भी है। क्योंकि समाज इस बात का अधिकारी है कि उसका प्रत्येक मनुष्य उसे सुखी और उन्नत बनाने में यथाशक्ति सहायता दे। यदि

परोपकार की सीमा संकुचित हो तो उससे थोड़े ही लोगों को लाभ पहुँचता है और यदि विस्तृत हो तो उससे समाज और देश का कल्याण होता है। स्वर्गीय ईश्वरचंद्र विद्यासागर के परोपकारी कार्य्यों से प्रायः सभी शिक्षित परिचित हैं। विद्या-सागर महाशय का दान और परोपकार इतना सात्विक और गुप्त होता था कि वे जो कार्य्य एक हाथ से करते थे उसे दूसरा हाथ तक न जानता था। उनकी सारी आय प्रायः दीन और असहाय विद्यार्थियों का खर्च चलाने तथा इसी प्रकार के अन्य परोपकारी कार्य्यों में लगती थी, अपने लिये वे उसमें का बहुत थोड़ा अंश लेते थे। विद्यासागर महाशय संकट में जिन लोगों की सहायता किया करते थे उन्हें यह भी न मालूम होता था कि उनका सहायक और उपकार करनेवाला कौन सज्जन है। सन् १८६७ के घोर दुर्भिक्ष में उन्होंने अनेक प्रकार के उद्योग करके असंख्य नर-नारियों के प्राण बचाए थे। महात्मा जस्टिस रानडे की भी यही दशा थी। उनके यहाँ सदा दरिद्र विद्यार्थियों की भीड़ लगी रहती थी जिन्हें उनकी ओर से खाने, पहनने और पढ़ने का सारा व्यय दिया जाता था। रोगियों की सेवा-शुश्रूषा की भी उन्हें बहुत अधिक चिंता रहती थी। यदि उनका एक साधारण खिदमतगार भी बीमार हो जाता तो वे दिन में कई बार स्वयं उसे जाकर देखते थे और उसके लिये वैद्य और पथ्य आदि का पूरा प्रबंध करते थे। भयंकर और संक्रामक रोग से पीड़ित रोगियों

के पास जाने में वे जरा भी न हिचकते थे। यदि उनका कोई आश्रित बीमार पड़ता तो घर से बाहर जाते समय वे अपनी स्त्री को उसकी देख-रेख और पथ्य आदि का प्रबंध करने के लिये कड़ी ताकीद कर जाते थे। छोटे और दीन मनुष्य की सहायता करना वे अपना प्रधान कर्त्तव्य समझते थे। एक बार एक गरीब बुढ़िया जमीन पर एक भारी बोझ रखे हुए उसे सिर पर उठाने की चिंता में खड़ी थी। उसके प्रार्थना करने पर हाईकोर्ट से लौटते हुए उस महानुभाव ने तुरंत हाथ लगा-कर वह बोझ उसके सिर पर रख दिया और अपना रास्ता लिया।

नाटौर की रानी भवानी की परोपकारिता बहुत प्रसिद्ध है। उन्होंने अपने राज्य के छोटे-छोटे गाँवों में रोगियों की चिकित्सा के लिये बहुत से वैद्यों का प्रबंध किया था। प्रत्येक वैद्य के साथ दो नौकर रहा करते थे जो गाँव-गाँव में घूमकर रोगियों की सेवा-शुश्रूषा और पथ्यादि का प्रबंध करते थे। यदि कोई मर जाता तो उसके क्रिया-कर्म्म के लिये रानी भवानी की ओर से यथेष्ट निश्चित द्रव्य दिया जाता था। यदि उनके राज्य में कोई स्त्री सती होना चाहती थी तो उसे रानी की ओर से सब सामान और कुछ रुपए मिलते थे। काशी में रानी भवानी ने सैकड़ों मंदिरों के सिवा कई अतिथि-शालाएँ और धर्म्मशालाएँ बनवाई थीं। दीनों को वे अपनी ओर से मकान बनवाकर रहने के लिये दान दे देती थीं और उनके खाने-पीने आदि का पूरा प्रबंध कर देती थीं। अन्न-

पूर्णा के मंदिर में वे प्रति दिन २५ मन चावल और ८ मन चना बाँटा करती थीं जिनसे चार हजार गरीबों का पेट भरता था। काशी आने के समय उनके साथ अन्न और वस्त्र आदि से भरी हुई बड़ी-बड़ी सत्रह सौ नावें आई थीं। इसके सिवा वे जब तक यहाँ रहीं तब तक अपने राज्य से प्रति वर्ष एक हजार ऐसी ही भरी हुई नावें मँगाया करती थीं। उनकी इसी दानशीलता और पर-दु:ख-कातरता के कारण काशी-वासी उन्हें साक्षात् अन्नपूर्णा मानते थे।

कुछ लोग धन को आवश्यकता से बहुत अधिक प्रधानता देते हैं। वे समझते हैं कि बिना धन के किसी प्रकार का परोपकार हो ही नहीं सकता। पर ऐसा समझना बड़ी भारी भूल है। यदि निर्धन मनुष्य भी महानुभाव हो तो वह अनेक प्रकार से दूसरों का उपकार और कल्याण कर सकता है। हमारे प्राचीन ऋषि बहुत दरिद्र होने पर भी जगत् को बहुत बड़ा लाभ पहुँचाते थे। वास्तव में जगत् के कल्याण के लिये धनवानों की अपेक्षा दयाशील और सहृदय मनुष्यों की ही विशेष आवश्यकता होती है। इसमें संदेह नहीं कि धन से बहुत कुछ काम निकल सकता है, पर केवल धन से कुछ नहीं होता। जो लोग समाज में प्रतिष्ठित बनना चाहते हैं वे अपने लिये धनवान् होना बहुत आवश्यक समझते हैं। पर जब धन किसी अयोग्य के हाथ में जाता है तब उससे प्राय: अनर्थ ही होता है। पर लोग इस ओर ध्यान नहीं देते और किसी

मनुष्य की योग्यता का अनुमान उसके सद्गुणों से नहीं बल्कि उसकी आय और संपत्ति से लगाते हैं। यदि किसी मनुष्य ने अन्याय, अनीति और कुमार्ग से भी धन संग्रह किया हो तो लोग उसका बहुत आदर करते और उसे उच्च आसन देते हैं। धन को देखकर लोग सब प्रकार के दुर्गुणों को भूल जाते हैं। धन की चिंता लोगों को इतना अंधा कर देती है कि उन्हें और बातें तुच्छ मालूम होने लगती हैं। जब मनुष्य अनेक अनुचित उपायों से धन संग्रह कर लेता है तब अपना कलंक मिटाने के लिये दान-पुण्य और परोपकार आदि करने लगता है। यह दुर्दशा केवल एक देश या जाति की नहीं है बल्कि प्राय: सारे संसार की है।

एक बड़े विद्वान् का मत है कि यदि मनुष्य धनवान् होकर दूसरों को तुच्छ न समझने लगे तो संसार में होनेवाले अनर्थ आधे रह जायँ। यदि धनवान् निर्धनों से और स्वामी अपने सेवकों से अच्छा व्यवहार करने लगे तो बड़ा भारी दोष दूर हो सकता है। पर अमीर, नवाब, राजे और बड़े आदमी कभी गरीबों से बात करना भी पसंद नहीं करते। इस दुर्व्य-वहार के कारण हमारे देश की अपेक्षा सभ्य देश के निवासियों की बहुत अधिक हानि होती है, पर तो भी मदांधता उनका पीछा नहीं छोड़ती।

लोग धनवान् होने के लिये दिन पर दिन अधिक चेष्टा करते हैं। एक अच्छी रकम जमा कर लेने पर भी उनकी तृप्ति

नहीं होती और वे और अधिक रुपया पैदा करने के लिये असाधारण उद्योग करते हैं। ऐसे आदमियों का प्रायः शिक्षा या साहित्य से कोई संबंध नहीं होता। उन्हें लिखने-पढ़ने का जरा भी शौक नहीं होता; बल्कि उनमें से अधिकांश तो हस्ताक्षर करना भी नहीं जानते। उन्हें केवल धन या धनोपार्जन के उपाय के सिवा और कुछ भी नहीं सूझता। उनका धर्म्म, प्राण और सर्वस्व केवल धन ही होता है। ऐसे लोग अपनी संतान को शिक्षित बनाने का भी बहुत ही कम उद्योग करते हैं और प्रायः उन्हें निरक्षर ही रखते हैं।

ऐसे लोगों का इस प्रकार संग्रह किया हुआ धन उनके मरने पर उनके लड़कों के हाथ आता है। ऐसे लड़कों को अपने पिता के जीवन-काल में तो खर्च करने की स्वतंत्रता नहीं होती पर उनके मरते ही वे अपव्ययी और कुमार्गी हो जाते हैं। उन्हें किसी प्रकार की अच्छी शिक्षा तो मिलती ही नहीं, इसलिये उनके बिगड़ने में अधिक समय नहीं लगता। वे खूब जी खोलकर खर्च करते हैं। अपने बाप-दादा की तरह वे व्यापार और धनोपार्जन के लिये कठिन परिश्रम नहीं कर सकते। वे लोग "बाबू" बन जाते हैं और उनके सब कार्य्य बाबुओं के से होने लगते हैं। बाबू लोगों के हाथ में आते ही रुपए को पर लग जाते हैं और वह बहुत शीघ्र उड़ जाता है। आपको ऐसे अनेक घरों के उदाहरण मिलेंगे जिनमें पिता

ने तो बहुत सा धन कमाकर संग्रह किया; पुत्र ने उसे पानी की तरह बहा दिया और प्रपौत्र पूर्वजों की भाँति ज्यों का त्यों कंगाल बना रहा।

वृद्धावस्था में, जब कि मनुष्य कठिन परिश्रम करके धनोपार्जन करने में असमर्थ हो जाता है, सुखपूर्वक जीवन बिताने के लिये युवावस्था में उसे खूब परिश्रम और कार्य्य करना चाहिए। इसके सिवा युवावस्था में उसे अनेक प्रकार के चित्तविनोद के अतिरिक्त जी बहलाने के लिये पढ़ने-लिखने आदि का भी समय मिल सकता है। जो लोग केवल हास्य और विनोद में ही अपनी युवावस्था बिता देते हैं, उनकी वृद्धावस्था बड़ा कठिनता से कटती है। पर जिन लोगों को पढ़ने-लिखने का कुछ शौक होता है उनकी अंतिम अवस्था बड़े आनंद से बीतती है। जिस मनुष्य ने अपने सारे जीवन में धन कमाने के सिवा और कोई काम न किया हो, वह वृद्धावस्था में बहुत कष्ट पाता है। उसे दिन-रात धन की चिंता लगी रहती है; पर वह धन उसके किसी काम का नहीं। न तो वह उस धन को खा सकता है और न खर्च सकता है। उसका धन उसके लिये सुखदायी होने की अपेक्षा उलटे दु:खदायी हो जाता है। संसार के सबसे घोर और निकृष्ट पाप धनलोलुपता का वह दास हो जाता है; लोग उसे तुच्छ और घृणित समझने लगते हैं और वह स्वयं अपनी दृष्टि में गिर जाता है।

उस मनुष्य की दुरवस्था और दुःखावस्था का ध्यान कीजिए जिसने जन्म भर सब प्रकार के सुखों को तिलांजलि देकर बड़े परिश्रम से बहुत सा धन संग्रह किया और अंत समय तक उसे धन का ही ध्यान लगा रहा। अपनी मुट्ठी में जोर से रुपए पकड़े ही पकड़े उसके प्राण निकल गए। उसकी वासना सदा रुपए में ही लगी रही और उसने कभी रुपए को अपने पास से अलग नहीं किया। कैसा नीच और घृणित दृश्य है!

दरिद्रों को पास में धन न रहने के कारण जितना कष्ट नहीं होता उससे कहीं अधिक धनवानों को कंजूसी के कारण होता है। ऐसे धनवान् दिन पर दिन अधिक कंजूस होते जाते हैं और अपने आपको अधिकाधिक निर्धन समझने लगते हैं। ऐसे लोग भिखमंगों की मौत मरते हैं। अंत समय में उनकी धन संग्रह करने की वासना इतनी अधिक बढ़ जाती है कि वे दूसरों के टुकड़ों से अपना पेट पालने लगते हैं। ऐसे लोग अपनी केवल यही ख्याति छोड़ जाते हैं कि मरने के समय उनके पास बहुत सा धन था, पर इसमें उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं होती। ऐसे लोगों की प्रशंसा केवल उन्हीं की श्रेणी के नीच करते हैं। शिक्षित या प्रतिष्ठित समाज उनका कोई आदर नहीं करता।

धन और सुख का कोई आवश्यक संबंध नहीं है। किसी-किसी अवसर पर तो यहाँ तक देखा गया है कि धन उलटा दुःख का कारण हो जाता है। मनुष्य-जीवन में सबसे

अधिक सुख का समय वही है जब कि मनुष्य धीरे-धीरे दरिद्रता से निकलता और उन्नति करता जाता है। उसी समय वह मानों दूसरों को सुख पहुँचाने के लिये अपने सुखों का त्याग करता है, भविष्य में स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये अपनी आय का कुछ अंश बचाता है और दिन पर दिन अधिक परिश्रमी, बुद्धिमान और सुखी बनता जाता है। धनवान् और दरिद्र में उतना अधिक भेद नहीं है जितना कि लोग समझते हैं। धनवान् को प्रायः सभी कामों में अधिक धन लगाना पड़ता है, बहुधा धोखा खाना पड़ता है और खर्च करते-करते वह अंत में दरिद्र हो जाता है। धन संग्रह करने और उसे रक्षित रखने की चिंता से बहुत से धनवानों को उन्निद्र रोग हो जाता है और उन्हें रातों नींद नहीं आती। धन की चिंता उन्हें सदा दुखी और व्याकुल बनाए रहती है।

धनवानों को, अधिक खाने, पीने और सुखी रहने के कारण, प्रायः अनेक प्रकार के रोग हो जाया करते हैं। निर्धनों की अपेक्षा धनवान् और कम समझवालों की अपेक्षा बुद्धिमान् अधिक रोगी रहते हैं। एक बड़े विद्वान का कथन है कि अधिकांश बड़े-बड़े बादशाहों, सेनापतियों और तत्त्वज्ञों की मृत्यु वात रोग के कारण हुई है। ऐसे अवसर पर ही किसी मनुष्य को एक प्रकार का सुख और दूसरे प्रकार का दुःख देकर प्रकृति अपने पक्षपातशून्य होने का परिचय देती है।

अधिकांश धनवानों को न तो भूख लगती है और न उनका भोजन ही पचता है, पर दरिद्र इस प्रकार की विपत्तियों से प्रायः बचे रहते हैं। धनवानों के इस कष्ट के दूर करने का उपाय एक विद्वान् ने यह बतलाया है कि वे अपने खाने-पीने आदि में बहुत ही थोड़ा खर्च करें और उस थोड़े खर्च के लिए स्वयं परिश्रम करके धनोपार्जन करें। केवल सौभाग्य, पूर्वजों और नौकरों के बल पर जीवन निर्वाह करनेवाले कभी सुखी नहीं हो सकते। परिश्रम करनेवालों का भोजन तुरंत पच जाता है, पर दिन-रात मसनद पर पड़े रहने या गाड़ी-घोड़ों पर घूमनेवाले धनवान्, जिन्हें अपने पेट या पाचन-शक्ति का कभी स्मरण भी नहीं होता, सदा अपच से पीड़ित रहते हैं। ऐसे लोगों को भोजन के समय अपने कौर तक गिनने पड़ते हैं। पर परिश्रम और अपच का बहुत ही कम संयोग देखा जाता है।

बहुत से लोग धनवान् होना चाहते हैं, पर धन के दुःखों और कष्टों से वे परिचित नहीं होते। एक बार एक ड्यूक का एक पुराना परिचित व्यक्ति उससे मिलने के लिये पेरिस के एक होटल में गया, और यहाँ वह ड्यूक की सुख-सामग्री देखकर चकित हो गया। ड्यूक ने उसके मन की बात ताड़ ली और उससे कहा—"यदि तुम एक शर्त स्वीकार करो तो यह सारा वैभव तुम ले सकते हो।" परिचित ने पूछा—"वह शर्त्त कौन सी है?" ड्यूक ने उत्तर दिया—"तुम

मुझसे बीस कदम की दूरी पर खड़े हो जाओ और मैं तुम्हें लक्ष करके सौ बार बंदूक चलाऊँ।" परिचित के यह शर्त स्वीकार न करने पर ड्यूक ने कहा—"इतना वैभव प्राप्त करने से पहले मुझ पर दस दस कदम की दूरी से हजारों बार बंदूकें छोड़ी गई हैं।"

न जाने क्यों लोग निर्धन रहना नहीं चाहते। निर्धन होना कोई अप्रतिष्ठा की बात नहीं है। यदि मनुष्य किसी प्रकार का अन्याय या पाप न करे तो उसकी दरिद्रता बहुत प्रतिष्ठित होती है। जो मनुष्य अपने सब खर्च चलाकर कुछ रुपए बचा लेता है वह दरिद्र नहीं कहा जा सकता। जो अपनी आवश्यकता की कोई चीज उधार नहीं लेता वह धनहीन नहीं है। उसकी दशा उन लोगों की अपेक्षा कहीं अच्छी होती है जो सदा अकर्मण्य रहकर दूसरों से उधार लेते हैं और बनिए, हलवाई और बजाज के धन से अपना जीवन निर्वाह करते हैं। यदि मनुष्य के पास कुछ भी न हो तो वह दरिद्र नहीं है, पर यदि वह कोई काम न करे और खाली बैठा रहे तो अवश्य दरिद्र है। परिश्रम करके धन कमानेवाला मनुष्य, कुछ काम न करनेवाले धनवान् की अपेक्षा कहीं अच्छा होता है।

मनुष्य की बुद्धि प्रखर करने का सबसे अच्छा साधन दरिद्रता है। संसार में आज तक जितने बहुत बड़े-बड़े लोग हो गए हैं, उनमें से अधिकांश ने दरिद्रों के घर में ही जन्म लिया था। दरिद्रता से मनुष्य का नैतिक चरित्र शुद्ध और

पवित्र होता है। जो लोग वास्तव में योग्य होते हैं वे कठिन कार्य्यों से और भी प्रसन्न रहते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि मनुष्य की वीरता, सत्यता और महत्ता उसके धन के कारण नहीं बल्कि उसकी दरिद्रता और परिमित आय के अनुसार होती है। एक महात्मा का कथन है कि ईश्वर ने केवल दरिद्रता की सृष्टि की है, दुःख और कष्ट की नहीं। और वास्तव में इन दोनों में बड़ा भेद है। दुःख और कष्ट की सृष्टि मनुष्य के निज के दोषों के कारण होती है। दरिद्र होकर भी जो मनुष्य किसी प्रकार का परिश्रम करने लग जाता है वह प्रतिष्ठित होता है, पर जो भीख माँगना आरंभ कर देता है, वह अनेक प्रकार के पापों का भागी होता है।

धनवानों की अपेक्षा प्रायः निर्धन ही अधिक सुखी होते हैं। लोग धनवान् होने की इच्छा तो अवश्य करते हैं पर यदि उन्हें कभी ऐसा अवसर दिया जाय तो वे कभी उसके लिये तैयार न होंगे। एक मोची का किस्सा प्रसिद्ध है जिसने अपनी दशा से असंतुष्ट होने के कारण पहले बादशाह, तब वजीर और उसके उपरांत कोतवाल बनने की इच्छा की थी। पर जब उसने तीनों के कठिन कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व का विचार किया तब उसे अपनी पहली इच्छा पर अश्रद्धा हो गई। अंत में उसने सिपाही बनने की इच्छा की पर उसकी दशा भी उसे संतोषजनक न मालूम हुई और वह पहले की भाँति "मोची का मोची" ही बना रहा।

भारतवर्ष का दान सारे जगत् में बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ का दान बहुत अधिक और बड़ा विलक्षण होता है। यद्यपि हमारे यहाँ के सनातन दान की परिपाटी और उद्देश्य दोनों ही बहुत उच्च और प्रशंसनीय हैं, पर आजकल उसमें इतनी विकृति हो गई है कि उससे उपकार की अपेक्षा अपकार ही अधिक होता है। इसमें संदेह नहीं कि हमारे पूर्वज ऋषियों और महात्माओं ने दान की यह प्रथा औरों की अपेक्षा, जगत् का अधिक कल्याण करने के लिये ही निकाली थी पर काल-परिवर्त्तन के साथ ही साथ वह प्रथा इतनी बिगड़ गई है कि अब उससे अधिकांश अकर्म्मण्यों के पालन के सिवा देश का और कोई लाभ नहीं होता। महारानी अहिल्याबाई और रानी भवानी के दान इतने सात्विक और उच्च होते थे कि और देशों में उनकी समता मिलना कठिन है। प्राचीन काल में हमारा दान या तो वास्तविक दरिद्रों और असहायों के लिये हुआ करता था अथवा उन महानुभावों के लिये जो जगत् के कल्याण के अतिरिक्त और कोई कार्य्य नहीं करते थे। ऐसे ही लोग सर्वसाधारण की शिक्षा आदि का प्रबंध कर देते थे, इसलिये शिक्षा-विभाग के लिये हमारे यहाँ किसी विशेष दान की आवश्यकता न होती थी। स्थान-स्थान पर धर्मशालाएँ और अन्नसत्र आदि खोलना हमारे यहाँ बड़ा भारी पुण्य समझा जाता था और वास्तव में वह बात भी ठीक थी। पर आजकल की नई शिक्षा से प्रभावित लोग अब होटलों के सामने

धर्म्मशालाओं का कोई मूल्य नहीं समझते। ऐसे लोग यदि हमारे इस प्रकार के दान को दूषित कहें तो हमें उनका ध्यान न करना चाहिए। पर साथ ही हमें उन त्रुटियों को दूर करने में भी किसी प्रकार का आगापीछा न करना चाहिए जो वास्तव में हमारी दानप्रथा को बिगाड़ रही हैं।

हमारे देश में मंदिरों आदि की इतनी अधिकता हो गई है कि उनकी रक्षा और उनका जीर्णोद्धार करना ही हमारी शक्ति के बाहर हो रहा है। उन्हें छोड़कर अब और नए मंदिर आदि बनाना मानों उन दुर्दशा-ग्रस्त मंदिरों की संख्या बढ़ाना है। धर्म्मशालाओं और अन्नसत्रों आदि की आवश्यकता भारत सरीखे दरिद्र देश में बहुत अधिक है। पर हाँ, उनका प्रबंध इतनी उत्तमता से होना चाहिए कि उनके द्वारा ऐसे लोगों को ही सहायता मिले जो वास्तव में उसके पात्र हैं। धर्म्मशालाएँ या अन्नसत्र खोलकर उनका अधिकारी ऐसे लोगों को बना देना जो उनसे होटलों का काम लें, बहुत अनुचित है। हमारे सनातन दान से शिक्षकों, उपदेशकों और गुरुओं को बहुत कुछ लाभ पहुँचता था, पर अब वह बात नहीं रही। इसलिये शिक्षासंबंधी कार्य्यों के लिये हमें विशेष रूप से दान देने की आवश्यकता है। शिक्षा की प्राचीन और वर्त्तमान परिपाटी में जमीन आसमान का अंतर हो गया है; इसलिये यदि हम संसार में रहकर औरों से पिछड़ना न चाहें तो हमें वर्त्तमान शिक्षापद्धति को बहुत अधिक

सहायता देनी चाहिए। पर शिक्षा के लिये दान देते समय अपनी जातीयता पर भी हमें बहुत ध्यान रखना चाहिए और यह देख लेना चाहिए कि इस प्रकार की शिक्षा से हमारे धर्म्म या जातीयता को तो किसी प्रकार का धक्का नहीं पहुँचता है। जो जाति अपने पूर्वजों का महत्व भूलकर अपनी जातीयता नष्ट कर देती है वह प्रायः निर्बल हो जाती है और उसका कल्याण कंटकमय हो जाता है। संसार के साथ-साथ उन्नति करते समय हमें अपने प्राचीन भावों और विचारों को कभी पददलित नहीं करना चाहिए।

शिक्षा-संबंधी दान की सर्वश्रेष्ठता निर्विवाद सिद्ध है। सभी देश और काल के लोगों ने ऐसे दान की इसी लिये प्रशंसा की है कि उसकी सहायता से जगत् का अंधकार दूर होकर लोगों के सुख प्राप्त करने के साधन बढ़ते हैं। जो मनुष्य सात्विक भाव से दूसरों को सुखी करने में सहायता देता है, ईश्वर की सृष्टि में वही वास्तविक "मनुष्य" कहलाने के योग्य होता है। दानवीर जमशेदजी नसरवानजी ताता की कीर्त्ति भारत में इसी लिये अमर हो गई है कि उनके दान से असंख्य लोगों की बहुत आवश्यक शिक्षा का समुचित प्रबंध हुआ है। मिस्टर ताता ने बहुत दूर-दूर की यात्राएँ करके बहुत अच्छा अनुभव प्राप्त किया था और अपने देश को उस अनुभव का लाभ पहुँचाने के लिये उन्होंने एक रिसर्च इंस्टीट्यूट (Research Institute) खोलना निश्चित किया था। इसके

सिवा उन्होंने यह भी निश्चय किया था कि जब तक यह संस्था स्थापित न हो जाय तब तक उनकी ओर से दो लाख दस हजार रुपये वार्षिक की छात्रवृत्तियाँ ऐसे लोगों को दी जाँ जो लंदन जाकर अनेक प्रकार के शिल्प और विज्ञान आदि की शिक्षा प्राप्त करें। इसके सिवा उन्होंने भारत सरकार को वैज्ञानिक खोज के लिये बहुत बड़ी आय की एक जायदाद भी दी थी। साथ ही समस्त पश्चिम भारत में उन्होंने रुई का बहुत बड़ा व्यापार चलाकर अपने देश को लाभ पहुँचाया था। भारत में शिल्प और कला आदि के प्रचार और सुधार के लिये जितनी आर्थिक सहायता मि० ताता ने दी है, उतनी और किसी ने नहीं दी।

इसके सिवा भारत के भिन्न-भिन्न भागों में और भी अनेक महानुभाव अपने देशवासियों की शिक्षा आदि के लिये बहुत कुछ उद्योग करते हैं। सन् १९१४ के आरंभ में मँडला (मध्य प्रदेश) में रायबहादुर चौधरी जगन्नाथप्रसाद का देहांत हुआ है जिन्होंने अपने नगर में एक बड़ी संस्कृत पाठ-शाला, एक आयुर्वेदिक पाठशाला और एक हाई स्कूल स्थापित किया था। इसके सिवा उन्होंने एक बड़ा औषधालय भी खोल रखा था और अनेक प्रकार के दानों से अपने प्रांत को लाभ पहुँचाया था। इसी प्रकार के और भी अनेक सज्जनों के नाम लिए जा सकते हैं जिन्होंने किसी न किसी प्रकार से शिक्षाप्रचार में बहुत सहायता दी है। मिस्टर गोखले ने

अपनी शिक्षा संबंधी स्कीम के अनुसार कार्य्य कराने के लिये जो अविरत परिश्रम किया है वह बहुत ही प्रशंसनीय है और उसके लिये सभी भारतवासी उनके बहुत कृतज्ञ हैं। यद्यपि गुरुकुल काँगड़ी की शिक्षा केवल एक विशेष धर्म्म के अनुयायियों के लिये ही उपयुक्त है तो भी उसके साधु और उच्च होने में कोई संदेह नहीं है, और उस प्रकार की और अनेक ऐसी संस्थाओं की बहुत बड़ी आवश्यकता है जो सब लोगों को समान रूप से लाभ पहुँचा सकें।

दान जब तक समझ-बूझकर और बुद्धिमत्ता से न किया जाय तब तक उससे प्रायः हानि ही होती है। यदि भारतवासी पात्रापात्र का विचार करके दान देना सीख लें तो हमारे असंख्य भाइयों की दरिद्रता दूर हो सकती है। वास्तविक उदारता केवल धन देने में नहीं है। जो लोग दूसरों को धन देने में ही उदारता समझते हैं वे जगत् में अकर्म्मण्यों और अपराधियों की संख्या बढ़ाते हैं। प्रत्येक नगर में आपको हजारों हट्टे-कट्टे भिखमंगे मिलेंगे। ऐसे लोगों को बिना किसी प्रकार का परिश्रम किए ही अपने निर्वाह के लिये यथेष्ट धन मिल जाता है और वे किसी प्रकार परिश्रम करना पाप समझने लगते हैं। उनकी देखा-देखी और भी अकर्म्मण्य उनमें जा मिलते हैं और पृथिवी का भार बढ़ाते हैं। इस प्रकार जो धन दरिद्रता और कष्ट दूर करने के लिये व्यय किया जाता है वह उलटे उन दोनों की वृद्धि करता है। जो लोग

किसी प्रकार का श्रम नहीं करना चाहते उन्हें और लोग सहायता देने लगते हैं। इस प्रकार देश भर के अकर्मण्य धीरे-धीरे आरामतलब हो जाते हैं; और उनके पालन का भार श्रमजीवियों पर आ पड़ता है, लेकिन वास्तविक उदार और परोपकारी वही है जो दरिद्रता और पर-निर्भरता दूर करने की चेष्टा करता है और दरिद्रों को अपने पैरों पर खड़ा होने में सहायता देता है। जो धन ऐसे कामों में लगाया जाता है, वही वास्तविक दान है।
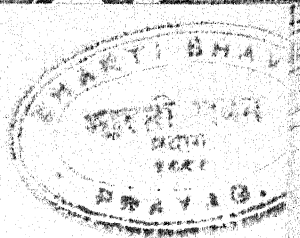
तेरहवाँ प्रकरण

स्वास्थ्य

जब तक मनुष्य का स्वास्थ्य अच्छा न हो तब तक उसकी सारी संपत्ति प्राय: व्यर्थ सी होती है। प्रत्येक मनुष्य को अपने स्वास्थ्य का अधिक ध्यान रहता है। अस्वस्थ मनुष्य का जीवन सदा दु:ख-पूर्ण हुआ करता है। शरीर को स्वस्थ और सुखी रखने के लिये प्रत्येक अंग से सदा काम लेते रहना चाहिए। प्रकृति का यही नियम है और जो इसका पालन करता है वह सुखी रहता है। यदि हम बीमार हो जायँ तो समझ लेना चाहिए कि हमने किसी नियम का अतिक्रमण किया है। रोग मानों हमें प्रकृति के नियमों से परिचित कराता है और भविष्य में उनका पालन करने के लिये सचेत करता है। जो मनुष्य प्रकृति के नियमों का पालन नहीं करता वह अनेक प्रकार के दु:ख भोगता है।

बड़े-बड़े नगरों में बहुत ही घनी बस्ती हुआ करती है। यहाँ छोटे, तंग, अँधेरे और गंदे स्थानों में बहुत से लोग मिलकर रहते हैं। फल यह होता है कि वहाँ की वायु दूषित हो जाती है और उससे ज्वर, हैजा और प्लेग आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। अधिक मनुष्यों के बहुत पास-पास रहने के

कारण इन रोगों को बढ़ते और भयंकर रूप धारण करते अधिक विलंब नहीं लगता और शीघ्र ही बहुत से प्राणों का बलिदान हो जाता है, इसलिये मनुष्य को स्वच्छ वायु की बहुत बड़ी आवश्यकता है। कलकत्ते की काल कोठरी के सिपाहियों के प्राण स्वच्छ वायु के अभाव के कारण ही निकल गए थे। ऐसा प्रायः देखा गया है कि जो लोग दूषित वायु में रहने के कारण रोगी हो गए हैं, वे स्वच्छ वायु में रहने से शीघ्र ही नीरोग हो जाते हैं। यही कारण है कि नगर में रहनेवालों की अपेक्षा देहात में रहनेवालों का स्वास्थ्य अधिक अच्छा होता है।

मनुष्य को पशु की स्थिति से उन्नत बनाने के लिये उसके वास्ते स्वच्छ घर का प्रबंध करना बहुत आवश्यक है। बालकों की उत्पत्ति घर में ही होती है और वहीं वे संसार के भले-बुरे और कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान प्राप्त करते हैं। जो घर खुला हुआ है और साफ-सुथरा होता है उसमें रहनेवालों का शारीरिक और नैतिक जीवन दूसरों की अपेक्षा अच्छा होता है। बालकों के चरित्र सुधारने में पाठशालाओं के शिक्षकों की अपेक्षा उनके माता-पिता और भाई-बहनों की सहायता की अधिक आवश्यकता होती है। घर का प्रभाव मनुष्य के जीवन पर बहुत अधिक पड़ता है और इसी लिये अच्छे और साफ-सुथरे घरों में रहनेवाले लोगों के विचार और कार्य अधिक उत्तम होते हैं।

घर को केवल खाने-पीने और सोने का ही स्थान न समझ लेना चाहिए; मनुष्य के सब प्रकार के गार्हस्थ्य सुखों का स्थान घर ही है। घर की सुंदरता और स्वच्छता स्त्री पर निर्भर होती है। इसलिये स्त्रियों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिसमें वे घर का सुप्रबंध करके उसे सुखजनक बना सकें। प्रत्येक बालिका को इस बात का ध्यान रखकर शिक्षा देनी चाहिए कि आगे चलकर वह गृहस्वामिनी और अनेक संतानों की माता बनेगी और अनेकों का सुख-दुःख उसकी योग्यता पर निर्भर होगा। जो स्त्रियाँ गृहस्थी के सब काम उत्तमता-पूर्वक करना नहीं जानतीं उनके संबंधी प्रायः दुखी रहते हैं। पुरुष ऐसे कामों से प्रायः उदासीन रहते हैं और स्त्रियों का ध्यान भी उस ओर दिलाने की चेष्टा नहीं करते। इसी लिये पहले गृहस्थों के सुख का और पीछे गृहस्थी का भी नाश हो जाता है।

बहुत लोग मितव्यय के विचार से छोटे, गंदे और तंग घरों में रहते हैं और अपनी शारीरिक दशा बहुत बिगाड़ लेते हैं। ऐसा मितव्यय, वास्तविक मितव्यय नहीं बल्कि सर्वनाश का कारण है। गंदे घरों में रहने के कारण मनुष्य रोगी हो जाता है और महीनों अपना काम-धंधा नहीं कर सकता। इन सब कामों में किफायत करके मनुष्य को अपने लिये स्वच्छ और खुले मकान का प्रबंध करना चाहिए। जो लोग मकान बनवाते हों उन्हें भी सदा इस बात का ध्यान रखना

चाहिए कि उनके सब कमरे खुले और हवादार हों। दोनों दशाओं में धन और स्थान उतना ही लगता है, पर थोड़ी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता से वह अनेक प्रकार से लाभदायक बन सकता है। यदि घर सदा साफ-सुथरा रहे और गृहस्वामिनी बुद्धिमती और मितव्ययी हो तो उस गृहस्थी के स्वर्ग-तुल्य होने में कोई संदेह नहीं रह जाता।

स्वास्थ्य और स्वच्छता के लिये स्वच्छ जल और स्वच्छ वायु की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है। जहाँ कोई चीज या जगह जरा गंदी हो तुरंत उसे साफ कर डालो। कुछ लोग सफाई को बिलकुल अनावश्यक समझते हैं और प्रायः उससे बहुत हानि उठाते हैं। जिस स्थान पर किसी प्रकार की बीमारी हो उसे स्वच्छ और शुद्ध करते ही वहाँ से बीमारी दूर हो जाती है। बंगाल प्रांत को लीजिए। वहाँ मलेरिया की बहुत अधिकता इसी लिये है कि वहाँ स्वच्छता का बहुत अभाव है। वहाँ प्रत्येक गाँव में एक छोटा ताल होता है जिसमें सारे गाँव के मनुष्य और पशु नहाते हैं, वहीं सब घरों के बरतन माँजे और धोए जाते हैं और अधिकांश लोग उसी के किनारे पेशाब करते और स्त्रियाँ उसी में आबदस्त लेती हैं। यदि गाँव में कुओं की अधिकता न हुई तो उसी ताल का जल पीने के काम में भी आता है। भला ऐसे स्थानों में रहनेवालों के स्वास्थ्य सुधारने की क्या आशा की जा सकती है।

शारीरिक और नैतिक जीवन, तथा गार्हस्थ्य और सार्वजनिक सुख में बहुत बड़ा संबंध है। गंदे स्थानों में रहने से मनुष्य के विचार विकसित नहीं हो सकते और उसमें मानसिक दुर्बलता आ जाती है। ऐसा मनुष्य उन्नति करने में असमर्थ हो जाता है और उसे अनेक प्रकार के कष्ट आ घेरते हैं। जो लोग गंदगी से बचने की चेष्टा नहीं करते उनकी आर्थिक हानियाँ भी कम नहीं होतीं। एक ओर तो वे काम न कर सकने के कारण धनोपार्जन में असमर्थ रहते हैं और दूसरी ओर उन्हें ओषधि आदि में रुपए खर्च करने पड़ते हैं। यदि निर्धन लोग ऐसे संकट में पड़ जायँ तो उनकी और भी अधिक दुर्दशा होती है और उनकी सारी गृहस्थी चौपट हो जाती है।

प्रत्येक नगर की म्युनिसिपैलिटी स्वास्थ्य-सुधार के लिये नल, कल और सफाई आदि का प्रबंध करती है; पर जब तक प्रत्येक नगरनिवासी अपना-अपना घर स्वच्छ रखने का प्रबंध न करे तब तक म्युनिसिपैलिटी के उद्योगों का कोई अच्छा फल नहीं होता। स्वच्छता और स्वास्थ्य के लिये किसी प्रकार का राजनियम उतना अधिक उपयोगी नहीं होता जितना कि व्यक्तिगत उद्योग होता है। सरकार न तो हमारे मकानों को हवादार बना सकती है और न उन्हें स्वच्छ रखने का कोई प्रबंध कर सकती है। यह काम स्वयं हमारा है। हमें अपना और अपने बाल-बच्चों का स्वास्थ्य उत्तम बनाए

रखने के लिये अपने घरों को साफ़ और हवादार रखना बहुत आवश्यक है।

किराए के मकानों में रहनेवालों को इस संबंध में बहुत कठिनता होती है। जो लोग अपना मकान किराए पर चलाने के लिये बनवाते हैं वे प्रायः रहनेवालों के सुभीते का बहुत ही कम ध्यान रखते हैं। अभी हाल में बंबई में किराए के मकानों के संबंध में एक आदर्श कार्य्य हुआ है। वहाँ के स्वर्गीय सेठ भगवानदास नरोत्तमदास की धर्म्मपत्नी ने अपने पति के स्मारक में प्रायः डेढ़ लाख रुपए लगाकर एक मकान बनवाया है। उस मकान में ६६ कुटुंबों के रहने के लिये बहुत ही उत्तम और स्वास्थ्यवर्द्धक स्थान बने हैं। यह मकान किराए पर चलाया जाता है। निर्धन मनुष्यों को, जो रहने के लिये अपना मकान नहीं बनवा सकते, इस प्रकार की सहायता की बहुत बड़ी आवश्यकता है। जो महाजन और धनवान् थोड़े सूद पर अपना रुपया लगाने के साथ परोपकार भी किया चाहते हों, उन्हें ऐसे कार्य्यों में यथाशक्ति सहायता देकर पुण्य का भागी बनना चाहिए। इँगलैंड में इस प्रकार के बहुत से मकान बने हुए हैं जिनसे बहुत से लोगों को अच्छा लाभ पहुँचता है।

किराए के मकानों में रहनेवालों को परस्पर मिलकर भी मकान की सफाई आदि का प्रबंध करना चाहिए। दालान और चौक आदि नित्य धोए जाने चाहिएँ और स्वच्छ

वायु आने के लिये दरवाजे और खिड़कियाँ प्राय: खुली रहनी चाहिएँ। स्वच्छता आदि का प्रबंध स्त्रियों के जिम्मे रहना चाहिए। सरकार या म्युनिसिपैलिटी इसका कोई उद्योग नहीं कर सकती, उसके लिये केवल व्यक्तिगत उद्योग की ही आवश्यकता है। मनुष्य के आचार व्यवहार आदि प्राय: वैसे ही हो जाते हैं जैसे मकानों में वे रहते हैं। जो मनुष्य गंदे, अँधेरे और बदबूदार मकानों में रहते हों वे प्राय: किसी प्रकार की उन्नति नहीं कर सकते। इसलिये जब तक रहने के मकानों का सुधार न हो तब तक समाज या जाति की उन्नति की आशा करना भी व्यर्थ ही है।

यदि मकान साफ-सुथरे और हवादार भी हों, पर उनमें रहनेवाले गंदे ही हों, तो भी किसी प्रकार का लाभ नहीं हो सकता। ऐसे मनुष्य मकानों को भी चौपट कर देते हैं। इसलिये लोगों को स्वच्छतापूर्वक रहने के लाभ बतलाने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। जो लोग कुछ पढ़े-लिखे और समझदार हों उन्हें स्वच्छता के लाभ समझाने में अधिक कठिनता नहीं होती। जो लोग कुछ दिनों तक सफाई से रहें, वे आप ही आप उसके लाभ समझ सकते हैं और भविष्य में स्वच्छतापूर्वक रह सकते हैं। सभ्यता, शिक्षा और जाति या समाज की उन्नति के मुख्य लक्षण ये ही हैं।

धूल और गर्द से हमारी अनेक प्रकार की हानियाँ होती हैं। जिस चीज पर धूल और गर्द पड़ जाती है उसका

सौंदर्य्य और मूल्य घट जाता है। सुंदरी स्त्रियाँ भी यदि मैली-कुचैली रहें तो उन्हें देखकर घृणा होने लगती है। बालकों के विचार और आचार, गंदे रहने से, खराब हो जाते हैं। जिस व्यक्ति का शरीर स्वच्छ नहीं रहता उसका हृदय शुद्ध होने की बहुत कम संभावना रहती है। आत्मा-रूपी देवता का मंदिर शरीर है; इसलिये मंदिर की शुद्धि और स्वच्छता भी देवता की योग्यता के अनुसार ही होनी चाहिए। गंदे मनुष्य अनेक प्रकार के नाश करनेवाले मादक द्रव्यों के भी अभ्यस्त हो जाते हैं। शराबी, अफीमची, गँजेड़ी और चंडू-बाज सभी गंदे होते हैं। जो लोग स्वच्छता से रहना सीख जाँयगे, वे इस प्रकार के नष्ट नशों के बहुत ही कम अभ्यस्त होंगे। यह निश्चित सिद्धांत है कि स्वच्छतापूर्वक रहने-वालों की आत्मा भी प्रायः स्वच्छ ही रहती है, क्योंकि शरीर की ऊपरी दशा का बहुत बड़ा प्रभाव उसकी भीतरी अवस्था पर होता है।

स्वच्छता हिंदू धर्म्म का एक प्रधान अंग समझा जाता है। हमारे सभी धार्मिक बंधन हमें स्वच्छ रहने के लिये विवश करते हैं। हमारे यहाँ बिना स्नानादि किए पूजा और भोजन का विधान ही नहीं है। स्वच्छ रहना केवल पुण्य का कारण ही नहीं बल्कि स्वयं पुण्य है। शारीरिक और आत्मिक स्वच्छता का बड़ा भारी संबंध है। हिंदू स्वयं नित्य स्नान करते हैं, अपने देवताओं को स्नान कराते हैं और मंदिरों को

धोते और स्वच्छ रखते हैं। प्रातःकाल उठते ही हमें अपनी शारीरिक स्वच्छता के लिये अनेक कार्य्य करने पड़ते हैं। कुओं या तालाबों में नहाने की अपेक्षा नदियों में नहाना हमारे यहाँ अधिक पुण्य का कार्य्य समझा जाता है। पर अपने धर्म्म और देश से घृणा करनेवाले कुछ नवीन शिक्षित ऐसे कार्य्यों को बिलकुल निरर्थक और अनावश्यक समझते हैं। ऐसे लोगों को इन बातों से शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए।

जीव मात्र का सुख और कल्याण प्रायः ऐसी बातों पर ही निर्भर है जो आरंभ में देखने में बहुत ही तुच्छ मालूम होती हैं। जब तक ऐसी छोटी-छोटी बातों पर ध्यान न दिया जाय तब तक वास्तविक शारीरिक और आत्मिक सुख नहीं होता। जिन बालकों को नित्य स्नान कराया जाता, स्वच्छ भोजन कराया जाता और अच्छा कपड़ा पहनाया जाता है, उनका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है और उनकी बुद्धि भी प्रखर होती है। पर यदि इन सब बातों का ठीक प्रबंध न किया जाय तो परिणाम विपरीत और दुःखदायी होता है। येही बालक आगे चलकर बड़े और समझदार होते हैं। यदि आरंभ में ही उन्हें स्वच्छता का अभ्यास न डाला जाय तो भविष्य जीवन में उन्हें बहुत कम सुख मिलता है।

भोजन आदि बनाने, बालकों का पालन-पोषण करने और गृहस्थी के अन्य प्रबंध के लिये स्त्रियों को स्वच्छता की शिक्षा देना परम आवश्यक है। इसके सिवा उन्हें मितव्यय भी

सिखाना चाहिए। घर का अधिकांश व्यय उन्हीं के हाथ में होता है। जो स्त्रियाँ घर का सुप्रबंध नहीं कर सकतीं और न घर का हिसाब-किताब रख सकती हैं वे अपने कुटुंबियों को विपत्ति में डाल देती हैं। फूहड़ स्त्रियाँ घर को चौपट कर देती हैं। ऐसी स्त्रियों के हाथ के बने हुए भोजन स्वास्थ्य के लिये बहुत हानिकारक होते हैं। नासमझ स्त्रियाँ धनवानों के घर जाकर उन्हें सब प्रकार से दुखी कर देती हैं और समझ-दार स्त्रियाँ गरीबों के घर जाकर भी उन्हें सब तरह से सुखी बना देती हैं। तात्पर्य्य यह कि स्त्रियों के अशिक्षित और नासमझ होने के कारण पुरुषों को बहुत बड़ी-बड़ी हानियाँ उठानी पड़ती हैं। समाज या जाति का कल्याण और नाश बहुधा सुघर और फूहर स्त्रियों पर ही निर्भर होता है; इस-लिये स्त्री-शिक्षा उन्नति का बहुत आवश्यक कारण ही नहीं बल्कि अंग भी है।

चौदहवाँ प्रकरण

किस प्रकार जीवन-निर्वाह करना चाहिए

जीवन-निर्वाह करने की विद्या बहुत आवश्यक और महत्त्व-पूर्ण है। इस विद्या की सहायता से मनुष्य अपनी प्रत्येक वस्तु या कार्य्य को सर्वोत्तम बना सकता है। जो लोग उचित रूप से जीवन-निर्वाह करना जानते हैं वे ही मनुष्य-जीवन के सर्वश्रेष्ठ फल प्राप्त करते और बहुत सुखी रहते हैं। सुख-पूर्वक जीवन बिताने के लिये कुछ कम योग्यता की आवश्यकता नहीं होती। काव्य आदि की भाँति यह विद्या भी प्रायः स्वाभाविक ही होती है; पर शिक्षा से बहुत कुछ संस्कार और वृद्धि हो सकती है। उसका बीजारोपण माता-पिता द्वारा होता है; पर उसे फलदायक बनाने के लिये मनुष्य को स्वयं उसका अभ्यास करना पड़ता है। बिना बुद्धिमत्ता के मनुष्य को यह विद्या नहीं आती।

प्रसन्नता कोई ऐसी चीज नहीं है कि जिसके लिये मनुष्य को बड़ा भारी कष्ट या परिश्रम करना पड़े। वह दुष्प्राप्य नहीं है। हमारे जीवन-पथ में, छोटी-छोटी चीजों और बातों में वह छोटे-छोटे रत्नों की भाँति बिखरी होती है; पर अधिक प्रसन्नता प्राप्त करने के विचार से हम उस छोटी

प्रसन्नता का कुछ भी ध्यान नहीं करते और उसे छोड़ देते हैं। वास्तव में स्वच्छ हृदय से अपने छोटे और साधारण कर्त्तव्यों का पालन करने में ही वास्तविक प्रसन्नता मिलती है।

उदाहरण के लिये आप दो ऐसे मनुष्यों को लीजिए जिनमें से एक तो जीवन-निर्वाह की विद्या जानता है और दूसरा उससे एकदम अपरिचित है। जो मनुष्य यह विद्या जानता है वह बुद्धिमान् और दूरदर्शी होता है और उसे सदा प्रकृति में कुछ नवीनता और सुंदरता दिखाई देती है। जीवन उसके लिये बहुत ही महत्त्व-पूर्ण होता है और अपनी आत्मा को संतुष्ट और सुखी करने के लिये वह अपने कर्त्तव्यों का पालन करना बहुत आवश्यक समझता है। वह अपनी और दूसरों की उन्नति करता है और सदा उत्तम कार्य्य करने के लिये तैयार रहता है। उसका शरीर या मन कभी नहीं थकता। वह अपना सारा जीवन सुख और प्रतिष्ठापूर्वक बिताता है; उसके उत्तम कार्य्य ही उसके स्मारक का काम देते हैं और दूसरे लोगों के लिये बहुत अच्छा उदाहरण उपस्थित करते हैं।

पर, जो मनुष्य जीवन-निर्वाह की विद्या नहीं जानता उसे बहुत ही कम सुख मिलता है। पूर्ण वय प्राप्त करने से पहले ही वह अपने सारे सुखों का नाश कर बैठता है। पास में धन रहते हुए भी उसका जीवन-पथ किसी प्रकार मनोरंजक नहीं होता। न तो उसे विद्याध्ययन से प्रसन्नता होती है और न उसे प्रवास में आनंद मिलता है। ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता

जाता है त्यों-त्यों उसे जीवन दु:ख और कंटकपूर्ण मालूम होने लगता है। यद्यपि उसे जीवन में कुछ भी आनंद नहीं मिलता तो भी उसे मरने से बहुत भय लगता है। इतने में ही उसके जीवन-नाटक की जवनिका गिरती है और उसका अंत हो जाता है। उसका असंख्य धन उसके किसी काम नहीं आता; जीवन में उसे किसी प्रकार की सफलता नहीं होती और वह बहुत ही दु:खपूर्ण जीवन बिताकर इस संसार से बिदा हो जाता है।

केवल धन किसी के जीवन को वास्तविक आनंददायक नहीं बना सकता; उसके लिये सुरुचि, मनन और परिश्रम आदि की आवश्यकता होती है। सुरुचि से मनुष्य के सुख में बहुत वृद्धि होती है। आप अपने किसी मित्र के मकान में पैर रखते ही वहाँ की स्वच्छता और प्रबंध आदि देखकर कह सकते हैं कि आपके उस मित्र की रुचि कैसी है। यदि वहाँ फूलों के दो-चार गमले, दो-चार सुंदर चित्र और थोड़ी-बहुत पुस्तकें किसी स्थान पर सजाई हुई पावें तो समझ लें कि आपके उस मित्र की रुचि बहुत अच्छी है, और वह भली भाँति जानता है कि जीवन किस प्रकार बिताना चाहिए। ऐसे लोगों के भोजन, वस्त्र और बिछौने आदि सभी साफ-सुथरे होते हैं। पर यदि आप किसी ऐसे आदमी के मकान में जायँ जिसकी रुचि अच्छी और संस्कृत न हो तो वहाँ आपको सभी चीजें बे-सिलसिले और गंदी मिलेंगी। दालान और आँगन में इधर-उधर कूड़ा-कतवार पड़ा हुआ मिलेगा और

इधर-उधर जूठे बरतन लुड़कते हुए दिखाई देंगे। ऐसे लोग बहुत कुछ धन व्यय करके भी किसी प्रकार का सुख नहीं पा सकते। वह मनुष्य जीवन-निर्वाह की विद्या नहीं जानता, इसी लिये उसमें सुरुचि का अभाव होता है।

गाँव की छोटी-छोटी झोपड़ियों में भी आपको यही भेद मिलेगा। सुरुचिवाले लोग कष्ट और दरिद्रता में भी आनंद अनुभव करते हैं। वे अपना मकान खुले और स्वच्छ स्थान में बनाते हैं। उनके दालान और आँगन अच्छी तरह मिट्टी से लीपे-पोते रहते हैं और सब चीजें एक सुंदर क्रम से रखी हुई होती हैं। पर दूसरे झोपड़े में गंदे बालक इधर-उधर भूमि पर लोटते हुए दिखाई देते हैं। उनमें कहीं गोबर पड़ा हुआ होता है और कहीं जूठा या कूड़ा-कतवार। जो मनुष्य जीवन-निर्वाह की विद्या जानता है वह थोड़ी आय होने पर भी अपने घर का बहुत उत्तम प्रबंध कर लेता है, उसके भोजन और वस्त्र अच्छे होते हैं, वह सदा प्रसन्नचित्त दिखाई देता है और उसके पास कुछ धन भी जमा हो जाता है। पर जो व्यक्ति यह विद्या नहीं जानता वह अधिक आय होने पर भी अपने घर का कोई ठीक प्रबंध नहीं कर सकता, उसका भोजन मोटा और वस्त्र मैला होता है; वह सदा दुखी रहता है और सदा उस पर कुछ न कुछ ऋण बना रहता है।

इस भेद का कारण यही है—पहला मनुष्य बुद्धिमान् होता है और सुख करना जानता है। वह स्वयं भी प्रसन्न रहता है

और दूसरों को भी प्रसन्न रखता है। पर दूसरे को जरा भी बुद्धि नहीं होती और वह उस विद्या से अपरिचित होता है जो उसे या उसकी गृहस्थी को सुखी कर सकती है। एक का जीवन प्रेम, सहानुभूति, सावधानता, दूरदर्शिता और कर्त्तव्य-पूर्ण होता है; पर दूसरे को केवल पेट पालने के सिवा और किसी प्रकार की चिंता नहीं होती और कर्त्तव्य या दूरदर्शिता आदि का उसको जरा भी ध्यान नहीं होता। इन बातों का परिणाम यह होता है कि पहले मनुष्य की अपने समाज में अच्छी प्रतिष्ठा होती है, घर के लोगों की उस पर श्रद्धा और भक्ति होती है, उसके परिचित उसे आदर्श-पुरुष समझते हैं, उसका जीवन बहुत सुख से बीतता है और मरते समय उसे किसी प्रकार की चिंता या भय का अनुभव नहीं होता। पर दूसरे मनुष्य की दशा इससे एकदम विपरीत होती है, उसका दु:ख और अपमान वर्णनातीत होता है।

इन सब कारणों से मनुष्य को सुखपूर्वक जीवन बिताने की विद्या अवश्य सीखनी चाहिए। निर्धन से निर्धन मनुष्य भी इसकी सहायता से बहुत सुखी हो सकता है। जब तक हम स्वयं उस योग्य न बनें तब तक हमारी मृत्यु पर कोई भी शोक नहीं प्रकट करता। अपने भाग्य पर हमें बहुत से अंशों में अच्छा अधिकार होता है। हमारा मन सदा हमारे वश में रहता है, हम अपने विचारों और प्रवृत्तियों को अपने अधीन रख सकते और गृहस्थी में स्वर्ग-सुख का अनुभव कर सकते

हम स्वयं शिक्षित और गुणी बन सकते हैं और अपनी सतानों को भी वैसा ही बना सकते हैं। हम सुविचारी बन सकते हैं और शांति तथा प्रतिष्ठापूर्वक अपना जीवन बिता सकते हैं, और सबसे बढ़कर—हम इस संसार से बिदा होते समय आदर्श जीवन और विचार छोड़ जा सकते हैं।

जिस घर में सुख नहीं है वह वास्तव में घर नहीं बल्कि नरक है। घर का न होना और दुःख-पूर्ण होना दोनों ही बराबर हैं। सुख से हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि हम पशुओं की तरह अपना पेट भर लें और अपने पास कुछ रुपया जमा कर लें। वास्तविक सुख इनसे बहुत ऊँची श्रेणी का होता है और उसमें घर की स्वच्छता, सुप्रबंध, मितव्ययता, दूरदर्शिता तथा सुविचार आदि की आवश्यकता होती है। सुख की सहायता से ही मनुष्य की शारीरिक और नैतिक उन्नति होती है, और अनेक प्रकार के गुण और लाभ उत्पन्न होते हैं।

सुख के लिये धन की बहुत अधिक आवश्यकता नहीं होती। धन की आवश्यकता ऐश-आराम के लिये होती है, सुख के लिये नहीं। एक दरिद्र मनुष्य भी, जिसके पास जीवन-निर्वाह के लिये आवश्यक सामग्री बहुत ही परिमित होती है, बड़े सुख से अपना जीवन बिता सकता है। अधिक आय पर नहीं, बल्कि घर के सुप्रबंध पर सुख निर्भर रहता है।

लेकिन प्रत्येक मनुष्य का सुख उसकी रुचि के अनुसार और दूसरों से भिन्न होता है। एक मनुष्य जिसे सुख समझता

है, संभव है कि वह दूसरे को सुख न मालूम हो। सुख जितना सामग्री पर निर्भर होता है उतना ही मनुष्य की रुचि पर भी होता है। सुखी मनुष्य सदा दयालु होता है; उसके विचार औरों से भिन्न और अच्छे होते हैं; ऐसे मनुष्य सदा सत्यनिष्ठ, न्यायवान् और सुयोग्य होते हैं। किसी प्रकार का ऋण लेना वे अनुचित समझते हैं। उनके सब कार्य्य क्रमयुक्त और अच्छे होते हैं और वे साहसी, दृढ़ और परिश्रमी होते हैं। उन्हें किसी प्रकार का दुर्व्यसन नहीं होता। वे कभी अपनी आय से बढ़कर व्यय नहीं करते और यथाशक्ति दूसरों का उपकार और सहायता करते हैं। ऐसे लोगों की दशा सब प्रकार दूसरों से अच्छी होती है।

घर का सुप्रबंध प्रायः स्त्रियाँ ही भली भाँति कर सकती हैं। उन्हीं के स्वभाव, कार्य्य और योग्यता पर सारी गृहस्थी का सुख-दुःख अवलंबित रहता है। यदि पुरुष मितव्ययी हो, पर उसकी स्त्री अपव्यय करती हो, तो उसका कोई शुभ फल नहीं होता। जब तक स्त्री की पूरी सहायता न मिले तब तक पुरुष सुखी नहीं हो सकता। जो मनुष्य यह समझता है कि उसकी स्त्री मितव्यय और गृहस्थी का सुप्रबंध करती है, वह अपने काम में खूब जी लगाकर परिश्रम करता है। ऐसी स्त्री से केवल उसके घर के लोगों को ही सुख या लाभ नहीं पहुँ-चता, पर उसके पड़ोसियों को भी पहुँचता है; और उसकी संतान भी उसी की भाँति सुविचारी और योग्य हो जाती है।

प्रत्येक कार्य्य के लिये एक विशिष्ट पद्धति या व्यवस्था की आवश्यकता होती है। बिना व्यवस्था के आफिस, मकान या दूकान किसी का काम भी भली भाँति नहीं चल सकता। प्रत्येक वस्तु को क्रम से रखने और प्रत्येक कार्य्य को ठीक समय पर करने से सब कार्य्य अच्छा और बहुत अधिक होता है। धन के व्यय में भी सुव्यवस्था की आवश्यकता होती है। प्राय: लोगों के हाथ रुपया नहीं ठहरता और वे जो कुछ पाते हैं तत्काल खर्च कर देते हैं। बहुत सी स्त्रियों की भी यही दशा होती है। कम से कम वे खर्च करना नहीं जानतीं। ऐसी स्त्रियों या पुरुषों के सभी कार्य्य अनुचित, तुच्छ और गंदे होते हैं। सब लोग जानते हैं कि प्रत्येक कार्य्य में परिश्रम भी बहुत आवश्यक होता है। परिश्रम मानों प्रत्येक कार्य्य का प्राण है, पर बिना व्यवस्था के परिश्रम का भी पूरा फल नहीं मिलता। बिना व्यवस्था के परिश्रम कभी-कभी बोझ मालूम होता है। पर जो लोग व्यवस्थायुक्त परिश्रम करते हैं उनके सब काम साफ और बिना किसी प्रकार के गड़बड़ के होते हैं।

गृहस्थी का कार्य्य सुगमतापूर्वक चलाने के लिये दूसरा आवश्यक गुण विवेक या विचारशीलता है। उसकी सहायता से प्रत्येक कार्य्य नियमपूर्वक और ठीक समय पर होता है। किसी विषय के सामने आने पर उसके संबंध में सब बातों का ठीक ठीक निश्चय कर लेना ही विवेक का काम है। ज्ञान

और अनुभव से इसकी बहुत वृद्धि होती है। प्रत्येक कार्य्य के लिये कोई समय निश्चित कर लेना भी बहुत आवश्यक है। जो लोग अपना काम ठीक समय पर नहीं करते वे अपने साथ औरों की भी हानि करते हैं। जो लोग सब काम ठीक समय पर करते हैं वे बहुत सा काम करके भी आमोद-प्रमोद के लिये यथेष्ट समय निकाल सकते हैं। पर जो लोग इसका ध्यान नहीं रखते वे न तो कभी अपने कार्य्य समाप्त कर सकते हैं और न उन्हें किसी समय छुट्टी ही मिल सकती है।

किसी काम को आरंभ करने के बाद उसमें बराबर दृढ़तापूर्वक लगे रहने की भी बहुत आवश्यकता होती है। गृहस्थी के लिये आवश्यक गुणों में से यह भी एक है। कोई अच्छा काम आरंभ करके उसमें धैर्यपूर्वक लगे रहो। जब तक तुम्हें कोई यथेष्ट कारण न मिले तब तक उसे कभी मत छोड़ो। यदि तुम उसमें दृढ़तापूर्वक लगे रहोगे तो समय पाकर तुम्हें अवश्य कुछ अच्छा फल मिलेगा। यदि ऐसे काम का आरंभ विचारपूर्वक किया जायगा तो वह अवश्य ही धीरे-धीरे उत्तमतापूर्वक समाप्त हो जायगा; और उससे तुम्हारा बहुत कुछ लाभ भी होगा।

सुशीलता भी मनुष्य के लिये बहुत लाभदायक है। जो मनुष्य दयालु, सहनशील और प्रसन्नचित्त होता है वह अपने साथ-साथ औरों को भी सुखी और प्रसन्न रखता है। जिसका

स्वभाव उत्तम होता है वह दूसरों को भी सुविचारी और सुशील बना देता है। जिसका स्वभाव दुष्ट होता है, उसे लोग तुच्छ और घृणित समझते हैं। सदा कुछ न कुछ व्यर्थ बकते-झकते रहना और किसी न किसी से लड़ते रहना बहुत ही अनुचित है। घड़ी-घड़ी शपथ खाना भी बहुत बुरा है। शपथ खाना मानों व्यर्थ अपने आपको नास्तिक और झूठा समझना और प्रकट करना है। इसके सिवा जो मनुष्य औरों के साथ अच्छा व्यवहार करना नहीं जानता वह महा-नुभाव, सत्यनिष्ठ और सदाचारी होने पर भी अच्छा नहीं समझा जाता। जिस मनुष्य में इन गुणों के साथ-साथ नम्रता भा है और जो दूसरों से मीठे वचन बोलता और उनका आदर-सत्कार करता है, वह वास्तव में सज्जन है।

इन गुणों के सीखने या सिखलाने के लिये किसी प्रकार के नियम आदि की आवश्यकता नहीं होती; केवल अच्छे-अच्छे उदाहरण ही इनकी शिक्षा के लिये यथेष्ट होते हैं। केवल नम्रता से हम और लोगों को यह दिखला सकते हैं कि उनके प्रति हमारा भाव कैसा है, और हमारे हृदय में उनके लिये कहाँ तक आदर है। पर जिस मनुष्य का हम कुछ आदर नहीं करते उसके साथ भी हम नम्रता का व्यवहार कर सकते हैं। जो कार्य्य उत्तम रीति से नहीं किया जाता उसका आधा मूल्य नष्ट हो जाता है। मान लीजिए, कोई दीन मनुष्य बड़ी विपत्ति में पड़ा है और अपने किसी मित्र से सहायता माँगता

है। यदि वह मित्र बेगार टालने के अभिप्राय से उसे सहायता दे दे, तो वह मनुष्य उसके इस कृत्य को कभी कृपायुक्त नहीं समझ सकता। पर यदि सहायता देते समय उसके साथ सहानुभूति भी दिखलाई जाय और उससे कुछ मीठे वचन कह दिए जायँ तो उस सहायता का मूल्य बहुत बढ़ जाता है।

उत्तम व्यवहार को सज्जनता का बहुत अच्छा चिह्न समझना चाहिए। जो मनुष्य किसी के प्रति उत्तम व्यवहार करे उसके संबंध में समझ लेना चाहिए कि वह श्रेष्ठ कुल और शील का मनुष्य है। केवल धनवान् ही नहीं, बल्कि दरिद्र भी परस्पर एक दूसरे से व्यवहार करते समय इस सद्‌गुण का परिचय दे सकते हैं। जिसके पास एक पैसा भी नहीं है वह भी दूसरों के प्रति दया, सहानुभूति और सुजनता दिखला सकता है। यह कोई ऐसा गुण नहीं है जिसका संबंध मनुष्य के जन्म के साथ हो; यह युवावस्था में लोगों के प्रति व्यवहार करते समय ही सीखा जा सकता है। जो मनुष्य दूसरों के प्रति उत्तम व्यवहार करता है, वह उनके साथ-साथ अपनी प्रतिष्ठा भी बढ़ा लेता है। नम्र होने और दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करने में हमारी अप्रतिष्ठा नहीं बल्कि सुप्रतिष्ठा होती है। दूसरों का आदर करना मानों अपना सम्मान करना है।

सदा और सब अवसरों पर हम दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार कर सकते हैं। किसी के यहाँ जाने-आने के समय,

किसी से रास्ते में मिलने के समय और किसी को कुछ देने या उससे लेने के समय हम उससे उत्तम व्यवहार कर सकते हैं। पर हाँ, ऐसा करने से पहले, हमारी दूसरों को प्रसन्न करने की इच्छा होना आवश्यक है। यदि हम किसी के प्रति दया दिखलावें, तो उसकी अपेक्षा कहीं अधिक प्रसन्नता स्वयं हमें होती है। दूसरे के प्रति उपकार या दया करते ही हमारा हृदय गद्‌गद और मन संतुष्ट हो जाता है।

साधारण मनुष्यों और श्रमजीवियों को एक दूसरे के प्रति अच्छा व्यवहार करने की बहुत अधिक आवश्यकता होती है क्योंकि उनके अधिकांश कार्य्य परस्पर एक दूसरे पर ही अवलंबित होते हैं। साधारण मनुष्यों का परस्पर बहुत अधिक संबंध होता है; पर धनवानों को बहुत ही थोड़े और चुने हुए लोगों से काम पड़ता है। धनवानों की अपेक्षा धनहीनों का सुख और आनंद उनके सुस्वभाव और सुकार्य्यों पर अधिक निर्भर रहता है। जो मनुष्य अपने संबंधियों और दूसरों के साथ सद्‌व्यवहार करना नहीं जानता, स्वयं उसका जीवन भी बहुत दुःख और निराशा-पूर्ण हो जाता है।

सुशील और दयालु होने के लिये धनवान् या संपन्न होने की आवश्यकता नहीं होती। सबके साथ सहानुभूति दिखलाना और मीठे वचन बोलना ही यथेष्ट है। इसका परिणाम बहुत संतोषजनक और लाभदायक होता है। सभी स्थानों और अवसरों पर ऐसे मनुष्यों के अनेक सहायक और मित्र

निकल आते हैं। अपने समाज तथा सहयोगियों में वह बहुत अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है और दूसरों पर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। ऐसे मनुष्यों का काम-धंधे और खाने-पीने से जो समय बचता है वह बड़े ही सुख और आनंद से बीतता है। उनका सदा और सब प्रकार से मनोविनोद होता रहता है।

आजकल लोग मनोविनोद का जो अर्थ समझते हैं वह वास्तविक नहीं है। यदि सच पूछिए तो मनोविनोद भी शिक्षा का एक आवश्यक अंग है। यदि कोई बालक या मनुष्य कहीं कुछ खेलता हो तो यह कभी न समझना चाहिए कि वह व्यर्थ अपना समय नष्ट कर रहा है। यदि तुम स्वस्थ रहना चाहते हो तो किसी न किसी प्रकार का व्यायाम किया करो। जो लोग व्यायाम नहीं करते वे अनेक प्रकार के शारीरिक कष्ट उठाते हैं और प्रायः अपना कार्य्य करने में असमर्थ हो जाते हैं। लार्ड डर्बी का कथन है—"जिन विद्यार्थियों को व्यायाम करने का समय नहीं मिलता उन्हें शीघ्र ही रोगी होने के लिये समय मिल जाता है।"

बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो किसी प्रकार की प्रसन्नता या मनोविनोद को अनावश्यक और अनुचित समझते हैं। यदि ऐसे लोगों का वश चले तो वे संसार में मनोविनोद के सभी साधनों को एकदम नष्ट कर दें। ऐसे लोगों की गिनती पशुओं और नास्तिकों में करनी चाहिए। परमेश्वर ने मनुष्य

के सुख और मनोविनोद के लिये असंख्य साधन उत्पन्न किए हैं। उसने जगत् में मनुष्य के लिये अनेक प्रकार के सुंदर पदार्थ बनाए हैं और उसे सब प्रकार की योग्यता और गुणों से अलंकृत किया है। जो मनुष्य इन सबका यथोचित उपयोग करता हुआ स्वयं प्रसन्न रहता और दूसरों को प्रसन्न रखता है वह ईश्वर के कार्य में सहायता देता और उसका कृपापात्र बनता है। ऐसे लोगों का ही संसार में आना सार्थक होता है।

जो मनुष्य प्रसन्न रहता है उसका प्रत्येक कार्य्य उत्तम होता है; पर जो मनुष्य दुखी रहता और अनेक प्रकार के बुरे विचारों में डूबा रहता है वह असंतुष्ट और दुष्ट हो जाता है। यही कारण है कि प्रायः वे ही लोग अधिक अपराध करते हैं जो कभी प्रसन्न रहना जानते ही नहीं। मनुष्य में और इच्छाओं की अपेक्षा, प्रसन्न और सुखी रहने की इच्छा बहुत अधिक उत्कट होती है। अन्य अनेक प्राकृतिक इच्छाओं की भाँति इस इच्छा की सृष्टि भी किसी उत्तम अभिप्राय से ही हुई है। यह इच्छा किसी प्रकार दबाई नहीं जा सकती। यह किसी न किसी रूप में प्रकट हो ही जाती है। अनेक दोष दूर करने के लिये दिए हुए बहुत से उपदेशों की अपेक्षा उत्तम और निर्दोष मनोविनोद कहीं अधिक बढ़कर है। यदि हम उत्तम और निर्दोष मनोविनोद के लिये उद्योग न करें तो अवश्य ही हम किसी न किसी दुष्ट मनोविनोद में फँस जायँगे।

दुष्ट कार्य्यों से बचने के लिये किसी अच्छे कार्य्य में लगना बहुत आवश्यक है।

मादक द्रव्यों का प्रचार रोकनेवाली सभाओं का ध्यान अभी इस ओर नहीं गया है कि लोगों में सुरुचि का अभाव होने के कारण वे अनेक प्रकार के मादक द्रव्यों का व्यवहार करते हैं। यदि लोगों का ध्यान उत्तम और निर्दोष मनो-विनोद की ओर आकर्षित किया जाय तो उनका उद्देश्य बहुत शीघ्र सफल हो सकता है। साधारणत: श्रमजीवियों की रुचि सुधारने का कोई उद्योग नहीं किया जाता, इसी लिये वे बहुत शीघ्र कुमार्ग में लग जाते हैं। किसी समय जर्मन देश के निवासी बहुत मद्यप थे। उनकी मद्यपता सारे यूरोप में प्रसिद्ध थी। पर जब से उन लोगों में पठन-पाठन और गान-विद्या का प्रचार किया गया तब से उन्होंने मद्य पीना एकदम छोड़ दिया; और आज उनके समान मद्य न पीनेवाले लोग, यूरोप के और किसी प्रदेश में नहीं हैं।

गान-विद्या का मनुष्य पर बहुत उत्तम प्रभाव पड़ता है। इस विद्या के प्रचार से मनुष्य का नैतिक चरित बड़ी उत्तमता से सुधर जाता है। सब प्रकार के लोगों को उससे बहुत प्रसन्नता होती है। हमारे पूर्वज इस विद्या के लाभ बहुत भली भाँति जानते थे और इसी लिये सबसे पहले और बहुत अधिक मात्रा में इसका प्रचार हमारे ही देश में हुआ था। हमारे यहाँ कहा गया है कि "न विद्या संगीतात्परा" अर्थात्

संगीत से बढ़कर और कोई विद्या नहीं है। पर आजकल गाना-बजाना केवल रंडियों और भँडु.ओं का काम समझा जाता है। यदि ऐसे विचारों में कुछ सुधार हो सके और सर्वसाधारण की रुचि संगीत-शास्त्र की ओर हो जाय तो उससे अनेक लाभ हो सकते हैं। अनेक सभ्य देशों में तो पाठ्य पुस्तकों के साथ-साथ स्कूलों में बालकों को संगीत-विद्या की भी शिक्षा दी जाती है।

मनुष्य प्राय: स्वभाव से ही सौंदर्य्यप्रिय होता है। सौंदर्य्य-प्रियता मानों सभ्यता की दासी है। अमीरों की भाँति गरीब भी सौंदर्य्योपासक हो सकते हैं। साधारण फूल-पत्ते आदि बहुत ही सुलभ होने पर भी बहुत सुंदर और शोभायमान होते हैं। फूलों की स्वाभाविक सुंदरता का मनुष्य के हृदय पर इतना अच्छा प्रभाव होता है कि वह अनेक प्रकार के दोषों और अपराधों से बच जाता है। अनेक सभ्य देशों में परीक्षा करने पर यह बात सिद्ध हुई है कि फूलों की स्वाभाविक सुंदरता जेलखाने के बड़े-बड़े अपराधियों तक के विचार सुधार देती है। फूलों की प्रशंसा करता हुआ एक कवि कहता है—"यदि तुम सर्वश्रेष्ठ बनना चाहते हो तो फूलों से शिक्षा ग्रहण करो। वे निःस्वार्थ रूप से सब छोटे-बड़ों को उत्तम और मधुर सुगंधि देते हैं; पर मनुष्य किसी के साथ उपकार करते समय अपने हृदय में कुछ न कुछ स्वार्थ अवश्य रख लेता है।" कैसी उत्तम शिक्षा है!

फूलों को देवतुल्य श्रेष्ठ समझना चाहिए। फूलों की शोभा पृथिवी को स्वर्ग बना देती है। सुंदर फूल को देखकर मनुष्य का हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। फूलों के समान दूसरी निर्दोष वस्तु कदाचित् ही इस संसार में मिले। पवित्रता और सत्यता उनमें कूट-कूटकर भरी होती है। जिस मनुष्य का मन बालकों के कोमल शब्दों को सुनकर या फूलों की सुंदरता को देखकर प्रफुल्लित नहीं हो जाता, उसे मनुष्य न समझना चाहिए।

इसके सिवा मनुष्य और फूलों का बहुत घनिष्ठ संबंध है। जन्म, विवाह और मृत्यु सभी अवसरों पर उसका व्यवहार होता है। देवी-देवता आदि सभी को फूल प्रसन्न कर देता है। इसलिये सब लोगों को अपने मकान में यथाशक्ति थोड़े-बहुत फूलों के गमले अवश्य रखने चाहिएँ। फूलों से मनुष्य का मन प्रसन्न होता है, नेत्र तृप्त होते हैं और आस-पास की वायु सुगंधित और स्वास्थ्यवर्द्धक होती है। जिस स्थान पर फूल रखे जाते हैं वहाँ की शोभा बहुत अधिक बढ़ जाती है। बहुत ही दुखी मनुष्य भी फूल की शोभा देखकर आनंदित हो जाता है। फूलों को सुलभ और साधारण समझ-कर कभी उन्हें तुच्छ दृष्टि से न देखना चाहिए। सदा साधा-रण चीजें ही बहुत सुलभ और लाभदायक हुआ करती हैं।

सारी प्रकृति, सौंदर्य्य और शोभापूर्ण है; पर अपनी अज्ञता और मूर्खता के कारण हम उससे बहुत ही कम लाभ

उठाते हैं। हम किसी पदार्थ का ऊपरी या बाहरी भाग देखकर ही संतुष्ट हो जाते हैं और उसके मूल या वास्तविक गुण की ओर कभी नहीं जाते। यदि हम अपनी विचार-दृष्टि को अधिक विस्तृत करें तो हमें अपने चारों ओर जगत् में मनोविनोद के असंख्य साधन मिलेंगे। प्रत्येक पदार्थ हमारे लिये आनंदवर्द्धक हो सकता है; पर उसके लिये हमें उसका उचित ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

प्रकृति के साथ-साथ हमें कला-कौशल से भी प्रेम करना चाहिए। फूलों के बाद दूसरा नंबर चित्रों का है। थोड़े से साधारण चित्र यदि किसी कमरे में लगा दिए जायँ तो वे हमें प्रसन्नचित्त रखने में बहुत सहायक हो सकते हैं। जिस चित्र में कोई उत्तम विचार, वीरतापूर्ण दृश्य या प्राकृतिक सौंदर्य्य चित्रित किया गया हो, वह हमें अनेक प्रकार की उत्तमोत्तम शिक्षाएँ दे सकता है। इसके अतिरिक्त वह हमारे घर की शोभा बढ़ाता और उसे चित्ताकर्षक बनाता है, गार्हस्थ्य जीवन को बहुत प्रिय और शोभायमान बना देता है। किसी महान् पुरुष का चित्र देखकर हमें उसके उत्तमोत्तम गुणों और कार्य्यों का स्मरण हो आता है। ऐसे चित्र हमें सब प्रकार से उन्नत बनाने में बहुत सहायता देते हैं और हममें उत्तम और प्रशंसनीय गुण तथा विचार उत्पन्न करते हैं।

तात्पर्य्य यह कि उत्तमतापूर्वक जीवन-निर्वाह करने के अनेक उपाय और मार्ग हैं। प्रत्येक वस्तु को सर्वोत्तम बना-

कर उसका उपयोग करना ही इसका मूलमंत्र है। छोटे-छोटे पदार्थ भी बहुत उपयोगी और लाभदायक बनाए जा सकते हैं। जंगल, आकाश, घास, फूल सभी चीजें हमारे लिये मनोहर हो सकती हैं। हम उनसे अपने सभी सद्गुणों की वृद्धि कर सकते हैं। उसकी सहायता से हम स्वयं प्रसन्नचित्त हो सकते हैं और दूसरों को आनंद दे सकते हैं। हम अपने आपको उन्नत और महान् बना सकते हैं। सबसे बढ़कर, इसका लाभ यह होता है कि अंत में हमारा मोक्ष हो जाता है और हम परमात्मा में लीन हो जाते हैं; और वहीं इस जीवन-विद्या का सदा के लिये अंत हो जाता है।

पंद्रहवाँ प्रकरण

भारतवासियों का अपव्यय

जब किसी देश में कोई प्रथा चल पड़ती है तब फिर वह चाहे भली हो या बुरी, बहुत दिनों तक निरंतर चली जाती है; और बिना किसी बड़ी शक्ति के प्रयोग के उसका रुकना या उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन होना असंभव होता है। यद्यपि प्रथा पर काल-चक्र का बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है और समय पाकर अच्छी से अच्छी प्रथा में अनेक प्रकार के दोष और दुर्गुण आ जाते हैं तथा बुरी प्रथा में भी अनेक गुण उत्पन्न हो सकते हैं, पर उसका समूल नष्ट होना बहुत ही असंभव होता है। एक तो भारतवर्ष बहुत पुराना देश है और दूसरे यहाँ के निवासियों का यह एक साधारण और स्वाभाविक गुण है कि वे किसी प्राचीन प्रथा या प्रणाली का जल्दी परित्याग करना नहीं चाहते, इसलिये यहाँ की प्रथाओं के इतिहास का विलक्षण और गुण-अवगुण-मिश्रित होना कोई बड़ी बात नहीं है।

बहुत प्राचीन काल में संसार की जन-संख्या बहुत ही परिमित थी; लोगों को धन की आवश्यकता बहुत ही कम होती थी, इसी लिये लोग न तो उसका अधिक मूल्य समझते थे और न उसका विशेष आदर करते थे; जीवन-निर्वाह के

साधन बहुत ही सुलभ और यथेष्ट होते थे; जीवन-निर्वाह के लिये लोगों को अधिक परिश्रम, प्रयत्न या स्पर्धा की आवश्यकता न पड़ती थी और लोग आजकल की अपेक्षा बहुत अधिक सुखी और संतुष्ट थे। ऐसी अवस्था में उन लोगों के लिये सांसारिक उन्नति और सुख की ओर से उदासीन होकर ईश्वर-भजन में रत होना बहुत ही स्वाभाविक था। धीरे-धीरे उनके धार्म्मिक भावों की वृद्धि होने लगी और पारलौकिक सुख की धारणा उन पर अपना अधिकार जमाने लगी। कुछ समय के उपरांत यह धारणा यहाँ तक बढ़ गई कि भारत-वासियों का सारा जीवन आदि से अंत तक पारलौकिक ही हो गया और उन्हें पारलौकिक सुख के सामने सांसारिक सुख केवल तुच्छ ही नहीं बल्कि बहुत ही घृणित और दोष-पूर्ण मालूम होने लगा। उनके ये विचार उस समय कहाँ तक निंदनीय या प्रशंसनीय थे इसकी मीमांसा की तो यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है; पर इसमें संदेह नहीं कि वर्तमान काल में, जब कि संसार की सभी जातियाँ एक दूसरे से आगे बढ़ने के लिये सिरतोड़ परिश्रम करती हैं, और जीवन-यात्रा में नित्य नई पड़नेवाली अड़चनों को दूर करने के लिये उन्हें संग्राम सा करना पड़ता है, ऐसे विचार किसी जाति को समूल नष्ट कर देने के लिये यथेष्ट हैं।

अस्तु, हमारे इन पारलौकिक विचारों में समय-समय पर अनेक प्रकार के परिवर्तन होते गए पर उसके मूल अंश का

आभास सदा कुछ न कुछ बना ही रहा। आरंभ में वे विचार तो अवश्य योग्य थे और उसके अनंतर कुछ काल तक उनसे अनेक लाभ और कई अच्छे-अच्छे कार्य्य हुए, पर आगे चलकर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों उनमें दोष उत्पन्न होते गए और अंत में उन दोषों का अंश इतना अधिक बढ़ गया कि उस प्रथा पर साधारण दृष्टिपात करने से हानि के अतिरिक्त उसमें लाभ नाम को भी न मालूम होने लगा। इसका प्रधान कारण यह था कि समय बीतने पर हम उन उपयोगी बातों का मुख्य उद्देश्य तो भूलते गए पर उसे समयानुकूल बनाने के लिये हमने उसके कार्य्यक्रम में किसी प्रकार का परिवर्त्तन या परिवर्द्धन नहीं किया। फल यह हुआ कि उसका उपयोगी और लाभदायक अंश तो बिलकुल ही नष्ट हो गया और उसका स्थान अनेक प्रकार के दुर्गुणों और दोषों ने ले लिया।

यह एक निश्चित सिद्धांत है कि जो देश या जाति उन्नति नहीं करती उसका नाश शीघ्र ही हो जाता है। विद्या, बुद्धि, बल, व्यापार, वैभव आदि सभी बातों में संसार के किसी देश या जाति से कम न रहना ही उन्नति की परम सीमा है। पर इस उन्नति का यह भी अर्थ न होना चाहिए कि वह देश या जाति सब प्रकार के कुकर्मों और पापों की खान बन जाय। एक ओर तो सब प्रकार की शक्ति और संपन्नता प्राप्त कर लेना और दूसरी ओर घोर पापों में लिप्त रहना अत्यंत गर्हित

और निंदनीय है। हमारे पूर्वज नैतिक जीवन की पवित्रता का महत्त्व भली भाँति जानते थे, इसी लिये उन्होंने हमारे सब प्रकार के आचारों और व्यवहारों में धर्म्म का पुट दे दिया था। पर अविद्या और भोग-विलास में फँसे रहने के कारण हमने उनमें किसी प्रकार का परिवर्त्तन करके उन्हें समयानुकूल बनाने की कभी चेष्टा नहीं की और यही हमारे विनाश का कारण हुआ।

अब प्रकृत विषय को लीजिए। हमारे यहाँ बहुत प्राचीन काल से दान की प्रथा बहुत अधिक प्रचलित है और सब प्रकार के दानों से विद्या-दान का महत्त्व बहुत अधिक माना गया है। अभी हाल में मदरास के एक विद्वान् ने प्राचीन शिलालेखों तथा अन्य अनेक प्रमाणों से यह बात भली भांति सिद्ध की है कि पूर्वकाल में हमारे देवमंदिर बड़े-बड़े विद्यालयों और पाठशालाओं का काम देते थे। मंदिरों में बड़े-बड़े आचार्य्य और गुरु रहा करते थे जो विद्यार्थियों को अनेक प्रकार के शास्त्रों की शिक्षा दिया करते थे। प्रयाग, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार आदि के कुंभ के मेलों का मुख्य उद्देश्य यही था कि एक विशेष अवसर और विशेष स्थान पर सारे देश के विद्वान् और महात्मा एकत्र हों; परस्पर भेंट करके लोग एक दूसरे के विचारों से लाभ उठावें और देशहित के कार्य्यों पर विचार करें। जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य्य इन सम्मेलनों से होते थे, वैसे आजकल की कोरी वक्तृताएँ दिलानेवाली कांग्रेसों और

कान्फरेंसों से संभावित नहीं। इन अवसरों पर जो बड़े-बड़े दान होते थे वे प्राय: ऐसे लोगों को ही मिला करते थे जिनसे देश के वास्तविक कल्याण की कुछ आशा की जाती थी। उस समय के दान लेनेवाले केवल अपने उदरपोषण के लिये सर्वसाधारण का धन लेते थे और उसके बदले में इतना अधिक उपकार करते थे कि उलटे सर्वसाधारण ही उनके ऋणी रहा करते थे। वास्तव में हमारे पूर्वजों का मुख्य अभिप्राय इसी प्रकार के दानों से था जिनके फल-स्वरूप या तो हमारे देश का अंधकार दूर हो और या हमारे देश की उपजाऊ शक्ति बढ़े।

अब आप अपनी वर्त्तमान दान-पद्धति की ओर ध्यान दें तो आपको मालूम होगा कि ऊपर कहे हुए दान के सामने उसका कुछ भी मूल्य नहीं है। आजकल हिंदू जिन्हें दान देते हैं, उनमें देशोपकार करने की जरा भी शक्ति नहीं होती। दान देते समय, हमें कभी स्वप्न में भी पात्र या अपात्र का विचार नहीं होता। धर्म्म-ग्रंथों में कहा है कि अपात्र को दान देने से दाता और गृहीता दोनों का नाश हो जाता है; पर हम उस ओर भी ध्यान नहीं देते। ऐसा दान प्रकृत दान नहीं कहा जा सकता। हाँ, उसे धन का अपव्यय और नाश अवश्य कह सकते हैं और यही कारण है कि हमने भी उसे अपव्यय की श्रेणी में ही रखा है। हम यह बात स्वीकार करते हैं कि इस प्रकार का दान हमारे प्राचीन धार्म्मिक भावों की बहुत

कुछ रक्षा किए हुए है और उसे नष्ट होने से बचाता है; पर इसमें भी संदेह नहीं कि दूसरी ओर हमारे देश को उससे असंख्य हानियाँ हो रही हैं। आजकल दानस्वरूप हिंदू जितना धन व्यय करते हैं उसके बदले में उन्हें शतांश भी लाभ नहीं पहुँचता। ऐसे दानों से पारलौकिक सुख की आशा रखना भी वृथा है। पारलौकिक सुख केवल उसी दान से संभावित है जो वास्तव में किसी दीन या असहाय की रक्षा और सहायता के लिये किया जाय। ऐसा दान मनुष्यमात्र का कर्त्तव्य है और उसका महत्त्व भी और दानों से अधिक है। इसके अतिरिक्त जो दान ऐसे कार्य्यों के लिये किया जाय जिनसे हमारे देश की वास्तविक उन्नति संभावित हो तो वह भी सर्वश्रेष्ठ और परम कर्त्तव्य है। इसके अतिरिक्त और सब प्रकार के दानों को अपव्यय ही समझना चाहिए।

इस दृष्टि से देखिए तो आपको मालूम हो जायगा कि हिंदू अपने बहुत से धन का दान के रूप में अपव्यय ही करते हैं। इस अपव्यय से देश की अनेक हानियाँ होती हैं। हमारे यहाँ के अधिकांश दानपात्र सब प्रकार की शक्तियों से हीन होते हैं और प्रायः अनेक प्रकार के दुर्व्यसनों में फँस जाते हैं। यदि दुर्व्यसनों में वे न भी फँसें, तो भी इसमें संदेह नहीं कि वे देश के लिये भार-स्वरूप हैं और उनके किए कोई देशहितकर कार्य्य नहीं हो सकता। उनके कारण देश की शक्ति का नाश और ह्रास होता है; और दिन पर दिन उनके समान

अकर्म्मण्यों की संख्या बढ़ती है। यहीं आकर हमारे लिये शास्त्रों का वचन बहुत ठीक उतरता है कि कुपात्र को दान देने से दाता और गृहीता दोनों का नाश होता है। हमारा नाश ही हमारे समाज या देश का नाश है।

संतोष का विषय है कि अब हम लोग इन बातों पर थोड़ा-बहुत विचार करने लगे हैं और हमारा ध्यान इस प्रकार के दोषों की ओर जाने लगा है। पर तो भी ऐसे विचारवानों की संख्या अभी अपेक्षाकृत बहुत ही कम है। ऐसी दशा में, जब कि हमारे सामने दान के अनेक आवश्यक और उपयोगी मार्ग पड़े हों, धर्म्म के नाम मात्र पर अंधविश्वास रखकर अनावश्यक ही नहीं बल्कि हानिकारक दान करना बड़ी भारी मूर्खता है। एक तो हमारा देश यों ही बहुत दरिद्र है और हमारे करोड़ों देशभाइयों को कभी पेट भर अन्न नहीं मिलता; दूसरे हमारे यहाँ आए दिन अकाल पड़ा रहता है। यदि ऐसी दशा में हम लोग अपने उन दरिद्र तथा अकाल-पीड़ित भाइयों को अपने दान का पात्र बना दें और उनमें से दो-चार मनुष्यों का भी दुःख दूर कर सकें, या उनके प्राण बचा सकें तो उसका फल और पुण्य सैकड़ों अकर्म्मण्य दानजीवियों का आजन्म पालन करने से कहीं अधिक है।

इसमें संदेह नहीं कि हिंदू दान देने में बहुत शूर होते हैं और इसी लिये उनमें दान लेनेवाले शूरों की भी अधिकता

से सृष्टि होती है। राजा कर्ण और हरिश्चंद्र सरीखे दानी उत्पन्न करने की शक्ति भारत के अतिरिक्त किसी दूसरे देश में नहीं है। उसी प्रकार निर्लज्ज दान लेनेवाले भी केवल भारत ही उत्पन्न कर सकता है। युक्तप्रदेश में ब्राह्मणों की एक जाति दान लेने बल्कि भीख माँगने में बहुत वीर होती है। इस जाति के लोगों के संबंध में यह बात बहुत अधिक प्रसिद्ध है कि शहरों में जाकर वे लोग दिन के समय तो अपनी कुमारी कन्याओं को लेकर बाजारों में घूमते और उनके विवाह के बहाने लोगों से भीख माँगते हैं और रात के समय एक लोटा लेकर गलियों में घूमते और चिल्लाते फिरते हैं—"बाम्हन नगरी मा उपवास करत बाय" (ब्राह्मण नगरी में उपवास कर रहा है)। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि घंटे दो घंटे इस प्रकार फेरी लगाने से ही वे डेढ़-दो सेर आटा और दो-चार आने पैसे पा जाते हैं। उनकी दिन की कमाई इससे बिलकुल भिन्न होती है। केवल वही नहीं, बल्कि उनके परिवार के अन्य सभी पुरुष भिन्न-भिन्न स्थानों में घूमकर इसी प्रकार भीख माँगते हैं। इस जाति के लोगों में, विवाह आदि के अवसर पर, वर या कन्या पक्ष की योग्यता और संपन्नता का अनुमान एक इसी बात से लगा लिया जाता है कि "उनके यहाँ तो चार लोटे चलते हैं।"

इस प्रकार के दान को अपव्यय के सिवा और कुछ नहीं कह सकते। यदि इस प्रकार दान किया हुआ अन्न आदि किसी

एक स्थान पर संग्रह किया जाय तो अकाल आदि अवसरों पर उससे हजारों-लाखों असहायों के प्राण बच सकते हैं; और दाता भी बहुत कुछ पुण्य-संचय कर सकते हैं। भारत में मंदिर आदि जितने अधिक हैं उतने कदाचित् ही संसार के किसी अन्य देश में हों। इनमें से बहुत से मंदिर ऐसे निकलेंगे जिनका व्यय कई सौ रुपए मासिक तक पहुँचता है। यदि ऐसे बड़े-बड़े मंदिरों में एक-एक छोटा पुस्तकालय या विद्यालय भी खोल दिया जाय तो देश का उससे बहुत बड़ा लाभ हो सकता है। पर यह बात तभी हो सकती है जब कि दाता उस ओर ध्यान दें और दृढ़ निश्चय कर लें कि हमारे दान का कोई अंश नष्ट न होने पावेगा और उससे हमारे देश का वास्तविक उपकार और कल्याण होगा।

इस प्रकार के झूठे दान के बाद भारतवासियों का दूसरा अपव्यय मुकदमेबाजी है। इस काम में क्रम से मदरासी, बिहारी और पंजाबी, शेष भारत के समस्त प्रदेशों से बहुत बढ़े-चढ़े हैं। युक्तप्रांत और मध्य प्रदेशवाले भी कुछ कम मुकदमेबाज नहीं होते। जमींदारों और खेतिहरों को तो अपने मुकदमों से इतना समय, धन या अवकाश ही नहीं बच रहता कि वे उसे दूसरे कार्यों में लगा सकें! मुकदमेबाजी को भी बड़ा भारी नशा समझना चाहिए। प्रायः देखा गया है कि जो लोग अपनी आधी या उससे भी अधिक अवस्था तक कभी कचहरी नहीं गए, वे भी एक बार वादी या प्रतिवादी बनकर कचहरी

जाते ही मुकदमों के कीड़े बन गए हैं। ऐसे लोगों को नित्य कचहरी जाने का रोग सा हो जाता है और कोई आवश्यक कार्य्य न होने पर भी बिना कचहरी गए उन्हें चैन नहीं पड़ता। मुकद्दमेबाजी में अनेक प्रकार के आवश्यक और अनावश्यक व्यय अधिकता से करने पड़ते हैं, अनेक अवसरों पर बहुत कुछ झूठ बोलना पड़ता है, अनेक प्रकार के दाँव-पेंच तथा अन्य कुकर्म्म करने पड़ते हैं और अंत में बहुधा उसी यज्ञकुंड में अपनी और अपने सर्वस्व की आहुति भी देनी पड़ती है। सैकड़ों-हजारों उदाहरण ऐसे उपस्थित हैं जिनमें मुकदमेबाजी के कारण बड़े-बड़े धनवान् अपना सर्वस्व नष्ट करके ऋणी और कंगाल हो जाते हैं। बड़ी भारी विलक्षणता इसमें यह है कि अधिकांश मुकदमे बहुत ही छोटी और तुच्छ बातों के लिये हुआ करते हैं; और उनका मुख्य कारण अपना बड़प्पन दिखलाने या आन रखने के सिवा और कुछ भी नहीं होता। अभी थोड़े दिनों की बात है, बंबई प्रांत के दो धनवानों में केवल इसी बात के लिये कई बरसों तक मुकदमेबाजी होती रही कि उनमें से एक की बिल्ली प्रायः दूसरे के घर जाया करती थी। यह मुकदमा हाईकोर्ट तक पहुँचा था और उसमें दोनों पक्षों के पचास हजार से भी कुछ अधिक रुपए व्यय हुए थे। काशी में एक छोटा सा चबूतरा है जिसकी लंबाई चार-पाँच गज और चौड़ाई एक गज से भी कुछ कम है। इस चबूतरे के लिये एक बार मुकदमा चला था, जिसमें

दोनों पक्षवालों के एक-एक लाख रुपए लग गए। तभी से उस चबूतरे का नाम लक्खी चबूतरा पड़ गया और वह अब तक इसी नाम से विख्यात है। इसमें विशेषता यह है कि यह चबूतरा किसी बहुत अच्छे मौके पर भी नहीं है। इसी प्रकार और भी अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं जिनमें व्यर्थ की अथवा बहुत छोटी बातों के लिये बड़े-बड़े मुकदमे होते हैं। इधर कई वर्षों से हमारे देश के कुछ स्थानों में नए सिर से पंचायत की प्रथा आरंभ हुई है। यद्यपि इन पंचायतों के निर्णय बहुत ही उपयुक्त हुआ करते हैं पर तो भी न जाने क्यों लोग उससे लाभ उठाने से वंचित रहते हैं। प्राचीन काल में हमारे यहाँ केवल राजधानी के बहुत बड़े-बड़े मुकदमे ही राजाओं या शासकों के सामने जाते थे; शेष सब मुकदमे गाँव की पंचायतों में ही हुआ करते थे। यूरोप के दो-एक स्वतंत्र प्रदेशों ने तो इसकी उपयोगिता यहाँ तक स्वीकार की है कि वहाँ कोई मुकदमा बिना एक बार पंचायत में गए राज्य के न्यायालय में जा ही नहीं सकता। अर्थात् वहाँ मुकदमों का निर्णय केवल पंचायत द्वारा होता है और राज्य के न्यायालयों में उनकी अपील होती है।

हमारे देश में अपव्यय की तीसरी और बड़ी मद ऐयाशी है। भारतवर्ष के अधःपतन में सबसे अधिक सहायता इसी विलासिता ने दी है, यहाँ तक कि पृथ्वीराज की विलासिता ने ही इस देश को विदेशियों के अधीन कर दिया और उसे अनंत

काल के लिये परतंत्र बना दिया। पृथ्वीराज बड़े भारी वीर और योद्धा थे और उनके पास सब प्रकार का बल था; पर उन्होंने अपने इन सब गुणों का अधिकांश उपयोग केवल विलासिता और इंद्रिय-सुख के लिये ही किया था और अंत में जब उन्हें विदेशियों का सामना करना पड़ा तब वे अपनी निर्बलता के कारण अपने देश की रक्षा न कर सके। यदि इच्छनी, संयोगिता आदि ग्यारह रानियों के लिये उन्हें बाईस बार बड़े-बड़े युद्ध न करने पड़ते, तो भारतवर्ष को भी पराधीनता की बेड़ी न पहननी पड़ती। भोग-विलास में भारत-वासियों की समानता कदाचित् ही कोई कर सकता है। वाजिदअली शाह से बढ़कर बिलासी जगत् में दूसरा नहीं हुआ। उनकी हरमसरा में नित्य नई स्त्रियाँ भर्ती होती थीं और सबको हजारों रुपए मासिक वेतन मिला करते थे। किसी को दो, किसी को चार और किसी को दस या बीस हजार रुपए मासिक सरकारी खजाने से मिलते थे। इनके सिवा विवाहिता और खास बेगमों की संख्या सैकड़ों से भी अधिक थी जिनमें से प्रत्येक को कई लाख रुपए मासिक मिला करते थे। वाजिदअली अपने आपको कृष्ण कहा करते थे और सदा "सोलह सौ गोपियों" से घिरे रहा करते थे। उन्हें दिन-रात मांस, मदिरा और पौष्टिक पदार्थ खाने तथा परि-स्तान में आनंद करने के सिवा और कोई काम ही न था। पर इन सबका परिणाम क्या हुआ ? यही कि अँगरेजों ने उन्हें

तख्त से उतारकर मटियाबुर्ज में नजरबंद कर दिया और उनके लिये एक लाख मासिक वृत्ति नियत कर दी। नवाब साहब के यह लाख रुपए दो-चार या पाँच रोज में खर्च हो जाते थे और शेष मास उन्हें खाली हाथ ही बिताना पड़ता था। एक कहावत है कि "खर्च मनुष्य को तोड़कर टूटता है।" अर्थात् जो मनुष्य एक बार अपव्यय आरंभ कर देता है, वह जब तक स्वयं नष्ट न हो जाय तब तक उसका व्यय कम नहीं हो सकता। यही दशा वाजिदअली शाह की थी। इस दुरवस्था में भी उन्होंने तीन लाख कबूतर पाल रखे थे और नवाब साहब की सवारी उन्हीं की छाया में निकलती थी।

इस प्रकार भोग-विलास, वेश्या, भाँड़, मदिरा आदि में अपना सर्वस्व फूँक देनेवालों की संख्या हमारे देश में बहुत अधिक है। कलकत्ते में जब तक किसी के पास कम से कम एक वेश्या न हो तब तक उसकी गिनती "रईसों" में हो ही नहीं सकती। यद्यपि वहाँ रईस या बाबू बनने के लिये एक गाड़ी-घोड़ा और एक बाग की भी आवश्यकता होती है, पर जिसके पास ये चीजें न हों, उसको कम से कम एक वेश्या तो अवश्य ही रखनी पड़ती है, और विशेषता यह कि मदिरा बिना उसका भी एक अंग अपूर्ण ही समझा जाता है। जिन लोगों को आचार-विचार का थोड़ा-बहुत ध्यान रहता है और जो भाग्यवश वेश्यागमन से बच रहते हैं, उन्हें भी अंततः अपने पुत्र-पौत्र आदि के यज्ञोपवीत और विवाह के अवसरों पर

भाँड़ों और वेश्याओं का नाच अवश्य कराना पड़ता है। आधे से अधिक ऐसे अवसरों पर तो लोगों को इन कार्यों के लिये ऋण ही लेना पड़ता है। महफिलों में, जहाँ वेश्याओं का नृत्य होता है, सबसे आगे छोटे और कोमलमति बालक ही बैठाए जाते हैं। उनके नष्ट होने का सूत्रपात यहीं होता है। प्राय: महाजनों के दिवाले धूमधाम से विवाह में नाच कराने के कारण ही हो जाते हैं। साधारण स्थिति के लोगों को नष्ट करने के लिये मदिरा, भाँग, गाँजा, चंडू, अफीम, कोकेन आदि अनेक प्रकार के नशे भी कम नहीं हैं। सारांश यह कि हमारी आय के द्वार जितने कम हैं, व्यय के मार्ग उतने ही अधिक हैं। और जब तक हम लोग इस प्रकार के विनाशक अपव्यय से अपना पीछा न छुड़ा लें तब तक हमें अपनी, उन्नति की कौन कहे, स्थिति की भी आशा न रखनी चाहिए।

जो दुर्गुण किसी उन्नत और संपन्न जाति के भी नष्ट कर देने के लिये यथेष्ट हैं वे ही दुर्गुण निर्धन, अशक्त, अशिक्षित, रोगी और अल्पजीवी भारतवासियों में अधिकता से भरे हुए हैं। इसका शोकजनक परिणाम थोड़े से विचार से ही मालूम हो सकता है। हमारे लिये शिक्षा, साहित्य, शिल्प, वाणिज्य आदि अनेक लाभदायक और परम आवश्यक कार्य पड़े हुए हैं जिनकी उन्नति बिना हमारे तन, मन और धन लगाए हो ही नहीं सकती पर हम उनका कुछ विचार न कर, अपनी वर्त्तमान दशा से ही संतुष्ट हो रहते हैं। यदि कभी

कोई बात चली भी तो हम यही कहकर अलग हो जाते हैं कि "यह सब हमारे भाग्य का ही दोष है।" पर हम यह नहीं जानते कि मनुष्य अपने भाग्य का आप ही विधाता होता है। हमारे कृत्य ही हमारा भाग्य हैं। हम अपने ही कृत्यों से अपने सौभाग्य को नष्ट करते और अपने दुर्भाग्य को सौभाग्य बना सकते हैं। अपने देश की वर्त्तमान हीनावस्था को देखते हुए हमें सब प्रकार के भोग-विलास और आलस्य आदि त्यागकर कर्मक्षेत्र में उतर पड़ना चाहिए और प्रत्येक व्यक्ति को यथासाध्य अपनी और अपने देश की उन्नति में लग जाना चाहिए। यदि हम दृढ़प्रतिज्ञ होकर कोई कार्य आरंभ कर दें तो निस्संदेह ईश्वर भी सब प्रकार से हमारी सहायता करने लग जायगा और तब हम जगत् को दिखला सकेंगे कि मनुष्य ही अपने भाग्य का निर्माता होता है। अपनी अज्ञता के कारण भाग्य या ईश्वर को दोष देना बड़ी भारी भूल है। जो लोग वास्तव में योग्य होते हैं वे कभी भाग्य या विधाता को दोषी नहीं ठहराते बल्कि स्वयं कमर कसकर कार्य आरंभ कर देते हैं और अंत में उन्हें सफलता हो ही जाती है। हमें भी इस सिद्धांत पर दृढ़ विश्वास रखकर उद्योग आरंभ कर देना चाहिए; ईश्वर हमें अवश्य विजयी करेगा।*

---

* यह प्रकरण मूल पुस्तक में नहीं है, वरन् स्वतंत्र रूप से लिखा गया है। लेखक

मनोरंजन पुस्तकमाला

अब तक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

(१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल।

(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।

(३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक वेणीप्रसाद।

(४) आदर्श हिंदू १ भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्म्मा।

(५) " २ " "

(६) " ३ " "

(७) राणा जंगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।

(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा।

(९) जीवन के आनंद—लेखक गणपति जानकीराम दूबे बी० ए०।

(१०) भौतिक-विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद बी० एस-सी०, एल० टी०।

(११) लालचीन—लेखक वृजनंदन सहाय।

(१२) कबीरवचनावली—संग्रहकर्त्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय।

(१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी० ए०।

(१४) बुद्धदेव —लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।

(१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्मा।

(१६) सिक्खों का उत्थान और पतन—लेखक नंदकुमार देव शर्मा।

(१७) वीरमणि—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०।

(१८) नेपोलियन बोनापार्ट—लेखक राधामोहन गोकुलजी।

(१९) शासन-पद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार।

(२०) हिन्दुस्तान भाग १—लेखक दयाचंद्र गोयलीय बी० ए०।

(२१) " भाग २—लेखक "

(२२) महर्षि सुकरात—लेखक वेणीप्रसाद।

(२३) ज्योतिर्विनोद—लेखक संपूर्णानंद बी० एस-सी०, एल० टी०।

(२४) आत्मशिक्षण—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०।

(२५) सुंदरसार—संग्रहकर्ता पुरोहित हरिनारायण शर्मा बी० ए०।

(२६) जर्मनी का विकास भाग १—लेखक सूर्यकुमार वर्मा।

(२७) जर्मनी का विकास भाग २—लेखक सूर्यकुमार वर्मा ।

(२८) कृषिकौमुदी—लेखक दुर्गाप्रसादसिंह ।

(२९) कर्त्तव्यशास्त्र—लेखक गुलाबराय एम० ए०, एल-एल० बी० ।

(३०) मुसलमानी राज्य का इतिहास भाग १—लेखक मन्नन द्विवेदी बी० ए० ।

(३१) ,, भाग २— ,,

(३२) रणजीतसिंह—लेखक वेणीप्रसाद ।

(३३) विश्व-प्रपंच—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।

(३४) ,, —लेखक ,,

(३५) अहिल्याबाई—लेखक गोविंदराम केशवराम जोशी ।

(३६) रामचंद्रिका—संकलनकर्ता भगवानदीन ।

(३७) ऐतिहासिक कहानियाँ—लेखक द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी ।

(३८) हिंदी निबंधमाला भाग १—संग्रहकर्त्ता श्यामसुंदर-दास बी० ए० ।

(३९) ,, भाग २—संग्रहकर्त्ता ,,

(४०) सूरसुधा—संपादक मिश्रबंधु ।

(४१) कर्त्तव्य—लेखक रामचंद्र वर्म्मा ।

(४२) संक्षिप्त राम-स्वयंवर—लेखक व्रजरत्नदास ।

(४३) शिशु-पालन—लेखक डाक्टर मुकुंदस्वरूप वर्म्मा ।

(४४) शाही दृश्य—लेखक मक्खनलाल गुप्त गुर्क
(४५) पुरुषार्थ—लेखक जगन्मोहन वर्मा
(४६) तर्कशास्त्र पहला भाग—लेखक गुलाबराय एम० ए०, एल-एल बी०
(४७) तर्कशास्त्र दूसरा भाग— ” ”